निराकार ग्रंथमाला का सातवाँ ग्रंथ:—

वीर क्षत्राणियाँ

सम्पादक:—

श्री रामप्यारे त्रिपाठी,

प्रकाशक—

निराकार पुस्तकालय,

पुस्तक प्रकाशक और विक्रेता

लाजपतराय रोड, बनारस सिटी।

संशोधित और परिवर्द्धित द्वितीय संस्करण — १५२९ — मूल्य सादी १) सजिल्द १॥)

विषय सूची ।

कुँवरदेवी

कुँवर देवी।

मुगल खान्दान के सम्राट् अकबर के समय में केवल राज्याधिकार के स्वार्थ में मतवाले होकर कितने ही राजपूतों ने अपनी लड़कियाँ एवम् बहिनें मुसलमानों की नजर की थीं। अकबर के ज़नानख़ाने में हिन्दू राजपूत रानियाँ भी बहुत थीं। इतिहास के जानकारों से यह बातें छिपी नहीं हैं। मानसिंह यद्यपि वृद्ध थे, तथापि वीरता में उन्होंने कितने ही नौजवानों को नाकों चने चबवा दिये

थे। राजपूत सरदार अपनी लड़कियाँ एवम् बहिनें, मुसलमानों की नजर करते रहें यह मानसिंह पसन्द नहीं करते थे। मानसिंह सम्राट अकबर के दरबार में एक सरदार थे। फिर भी मानसिंह के पराक्रमानुसार दरबार में उनके रोब का अभाव था। इसका एक मात्र कारण यही था कि कितने ही मुसलमान सरदारों की नजरें मानसिंह के प्रति सन्देह पूर्ण थीं। दिखाने और खाने से प्रथक २ दाँत हुआ करते हैं यही मुसलमान सरदारों का मानसिंह के प्रति रुख था। मानसिंह भी अपनी जलन प्रकाश्य रूप में दिखाकर अपनी ही हानि करने के विपक्ष में थे। फलतः खून का घूँट पीकर अपने मान का संरक्षण करना ही उनके लिये एकमात्र तात्कालिक उपाय था।

मानसिंह का पुत्र रणसिंह सचमुच रणसिंह था। परन्तु राजपूत जाति सम्बन्धी आवश्यक अभिमान का अभाव ही उसके हृदय में विद्यमान था। सम्राट अकबर के दरबार में सर्वोच्च स्थान का प्राप्त करना ही रणसिंह का एक मात्र लक्ष्य था। लक्ष्य की प्राप्ति में वह प्रयत्नशील भी था। आये दिन मुसलमानों द्वारा हिन्दू स्त्रियों की लूट मचाने पर भी, रणसिंह के कानों पर जूँ न रेंगती थी। कारण यह था कि रणसिंह की सभी चेष्टायें स्वार्थ पूर्ण थीं। कुँवर देवी की अवस्था २० वर्ष से अधिक न थी वह नवयुवती थी। बाल्यावस्था में उसका विवाह एक राजपूत नवयुवक से हुआ था। देश

तथा धर्म के नाम पर, वीर प्रताप की ओर से, रणक्षेत्र में उस नवयुवक ने अपने प्राण रणदेवी को भेंट कर दिये थे। तभी से कुँवर देवी ने ससुराल का मुख नहीं देखा था। कुँवरदेवी अपने पिता ही की तरह अभिमाननी एवम् मुसलमानों से द्वेष करने वाली थी। इसमें सन्देह नहीं, कि कुँवर देवी की सुन्दरता देखकर कितने ही पापी मनुष्यों की आँखों में चकाचौंध उत्पन्न हो जाया करती थी।

रणसिंह का दोस्त अब्दुल खाँ, सम्राट अकबर के दरबार का एक माननीय सरदार था। अब्दुल खाँ को सम्राट अकबर अपने पुत्र की तरह प्यार करता था। कितने ही सरदार इसीलिये अब्दुल खाँ से दोस्ती किया करते थे। रणसिंह की भी इसी लिये अब्दुल खाँ से दोस्ती गठ गई थी। रणसिंह भली भांति जानता था कि अब्दुल खां से गठी दोस्ती एक न एक दिन सम्राट अकबर के दरबार में सर्वोच्च स्थान की प्राप्ति के निमित्त कारण बनेगी। इसीलिए रणसिंह बहुधा खाँ साहब को अपने घर पर बुलाकर खातिरदारी किया करता था। आज रणसिंह ने अपनी इसी स्वार्थ पूर्ण दोस्ती की रस्म अदा करने के लिए खाँ साहब को अपने यहां निमन्त्रित किया था।

खाँ साहब आये। कुँवर देवी उनकी आंखों में गड़ गई। फिर भी खाँ साहब ने अपने को खूब सँभाला। अपने दिल की बात को खाँ साहब ने जाहिर न किया। आज तक की

खाँ साहब की दोस्ती स्वार्थ रहित कही जा सकती थी ? पर अब आज से खाँ साहब की दोस्ती रणसिंह की तरह स्वार्थ के परे न रह सकी। मुसलमानी नजाकत भरे ढंग से खाँ साहब ने रणसिंह की तारीफ के पुल बांध दिये। रणसिंह को विश्वास दिलाया, कि वह दरबार में शीघ्र ही उच्च पदारूढ़ हो जायगा तब तो रणसिंह के मुँह से लार टपक पड़ी।

किसी प्रकार राम राम कहते दो मास व्यतीत हुए। दरबार में उपस्थित होने के लिये रणसिंह को दिल्ली जाना पड़ा वहाँ पुनः खाँ साहब से भेंट हुई। फिर क्या था ! रणसिंह खाँ साहब को एक ओर ले जाकर उच्च पदारूढ़ होने के लिए खाँ साहिब की सिफारिश के लिए भीख मांगने लगे। खाँ साहब निश्चयात्मक कुछ भी न कह कर, कल भेंट करने की आवश्यकता बतलाकर चल दिये।

दिल्ली का वैभव देखने के लिए रणसिंह के साथ कुँवरदेवी भी (दिल्ली) आई है। इस बात का पता लगने में खाँ साहब को कुछ देर न हुई। दूसरे दिन रणसिंह को खाँ साहब से मिलने जाना था। पर रणसिंह भाग्य के तीखे निकले। खुद खाँ साहब रणसिंह के घर आ पहुँचे। ऐसी अवस्था में रणसिंह का आनन्दित होना स्वाभाविक ही था। काम फतेह होने में रणसिंह को अब सन्देह न रहा। खाँ साहब का खूब सत्कार किया गया, इधर उधर की बातें होने के पश्चात् खाँ साहब ने अपनी इच्छा प्रकट कर दी। अब तो

रणसिंह का चेहरा गम्भीर हो गया। खिलौने की तरह वह चुप बैठा रहा। खाँ साहब से रणसिंह की अवस्था छिप न सकी। खाँ साहब ने भी रणसिंह को खूब भरमाया। चिड़िया जाल में फँस गई। रणसिंह ने अपनी बहिन कुँवर देवी को खाँ साहब की नजर करना स्वीकार कर लिया। इससे बढ़कर खुशी की बात और क्या हो सकती थी। आर्य-महिला के सतीत्व के बदले में राज्य के उच्च पदाधिकार की चाट खिलाकर खाँ साहब चलते हुये।

कितने ही राजपूतों ने अपनी कन्यायें और बहिनें, मुसलमानों को दी थीं पर रणसिंह को कभी तिलमात्र भी विचार करने की आवश्यकता नहीं हुई थी, परंतु अपनी बहिन का प्रश्न उपस्थित होते ही रणसिंह घबराया। सोचा—कि यदि कुँवरदेवी ने मेरी बात न मानी तो राज्याधिकार की प्यास ज्यों की त्यों रहते हुये भी महा अनर्थ हो जायगा। वह इस प्रकार विचार कर ही रहा था कि कुँवर देवी भी वहाँ आ पहुँची और भाई की उदासी का कारण पूछा। रणसिंह ने भी सभी बातें कह दीं। प्रत्युत्तर में देवी ने कहा, खाँ साहब से 'हाँ' करने वाले आप कौन थे? क्या पिताजी जीवित नहीं है? मैं साफ कहे देती हूँ, कि मैं आप की अपमान जनक आज्ञा स्वीकार करने वाली आर्य स्त्री नहीं हूँ? भले ही मेरे प्राण चले जायँ, पर आप याद रखिये, कि एक भारतीय महिला का सतीत्व जैसा आप

समझते हैं, वैसा सस्ता कभी नहीं था और न कभी हो सकता है।"

क्रोधावेश में इतना कह कर कुँवर देवी वहाँ से चल पड़ी। रणसिंह 'किंकर्त्तव्य विमूढ़' हो गया। अपने सतीत्व को खतरे में देख कर देवी ने अपने पिता के पास जाने की तैयारियाँ आरम्भ कर दीं। इस बात का किसी प्रकार रणसिंह को पता चल गया। फिर क्या था? पतित रणसिंह ने उसे एक कमरे में बंद कर दिया। समझाया बुझाया, पर वह आर्य-महिला हिमाचल की तरह अचल ही रही।

आज खाँ साहब की खुशी का कहीं ठिकाना नहीं। रणसिंह के प्रतिज्ञानुसार आज ही रात्रि में कुँवर देवी उसे प्राप्त होने वाली थी। "आज मैं खाँ साहब के सुपुर्द कर दी जाऊँगी" यह ख्याल आते ही कुँवर देवी रोने लगी। परंतु परमात्मा के सिवा उसकी टेर कौन सुन सकता था। आखिरकार उसने एक तरकीब सोच निकाली। वह उस समय तक चुप रही जब तक उसका भाई उसको खाँ साहब के पास पहुँचाने के लिये फिर से नहीं आया। उसने पुनः कुँवर देवी को समझाया बुझाया। इस बार कुँवर देवी ने अपने भाई की बात मान ली। कुछ ही देर पूर्व अपने प्रस्ताव से असहमत बहिन को सहमत होते देख, रणसिंह की खुशी का ठिकाना न रहा। तुरन्त ही कुँवर देवी खाँ साहब के घर पहुँचाई गई। देवी ने अपने मुख-चन्द्र से

परदा दूर कर खाँ साहब से मीठी-मीठी बातें आरम्भ कर दीं। स्वर्गानन्द की कल्पना ने खाँ साहब को मस्त कर दिया। बातों-बातों ही में कुँवर देवी ने अपने भाई से कुछ बातें करने की इच्छा प्रकट की। शीघ्र ही नौकर भेजा गया नौकर के जाते ही अवसर पाकर कुँवर देवी ने अपनी कटार निकाल कर, उसे खाँ साहब के गरमागर्म खून से शराबोर कर दिया।

खाँ साहब का काम तमाम करके कुँवरदेवी, भाई की प्रतीक्षा में समीप ही दूसरे महल में जा बैठी। भाई आया, उसे भी देवी ने अपनी कटार से यमपुर का रास्ता दिखाया और अन्त में वही कटार अपने हृदय में घुसेड़ कर वहीं अपनी भी इति श्री करली।

जयादेवी

जयादेवी

चितौड़ाधिपति राय रत्नसेन बालिये की पुत्री का नाम जयादेवी था। जिस समय इसकी अवस्था १५ वर्ष की थी, उस भरी युवावस्था में उसका शरीर पतला और सुडौल था सुन्दरता की अलौकिक छटा अंग प्रत्यंग से फूटी पड़ती थी। ऐसा प्रतीत होता था मानो दैवी शक्ति ने अपनी सारी करामात इसी के सँवारने में खर्च की हो। रंग रूप अति सुन्दर, चेहरा स्वच्छ था जब कभी वह

बात करती थी तो फूल से झरते थे और सुनने वाले चित्र लिखे से खड़े देखते रह जाते थे। आँखों की पुतलियाँ श्याम और अलौकिक छटा से परिपूर्ण थी। गौरवर्ण होने के कारण चञ्चलता चुई सी पड़ती थी।

उसके मुख मण्डल की बनावट ऐसी विचित्र और अनुपम थी कि देखने वालों की आँखें नहीं थकती थीं। ऐसी सुन्दर और कोमलाङ्गी होने पर भी जया के अन्दर राजपूती वीरत्व और साहस कूट-कूट कर भरा था।

जया जब उत्पन्न हुई थी—दुर्भाग्य वश उसकी माता का देहान्त हो गया। पालन पोषण शिक्षा दीक्षा का सारा भार रायरत्न सेन पर पड़ा। राय रत्नसेन जया को बहुत प्यार करते थे जब वह १५ वर्ष की हुई तो शादी का प्रबन्ध किया जाने लगा और उसकी बातचीत जैसलमेर के राजकुमार जयपाल से निश्चित हो गई।

जिन दिनों चित्तौड़ में यह व्यवस्था हो रही थी उन दिनों दिल्ली के मुसलमानी बादशाह अलाउद्दीन का डङ्का सारे भारतवर्ष में बज रहा था यह अपने षड्यन्त्र में सफल हुआ। राजा रत्नसेन अलाउद्दीन के जाल में फँस गये और कैद कर दिल्ली में बन्द कर दिये गये। इस घटना से जया को बड़ा दुःख हुआ और उसने दिल्ली चल कर पिता से मिलने और कैद से छुड़ाने की ठानी।

राजपूत वीरों की एक छोटी टोली और कुछ सखियों को साथ

ले जया दिल्ली को रवाना हो गई। यद्यपि वह पिता के कैद होने के कारण दुखी थी शोक और दुख से आँखें भरी हुई थीं इस पर भी साहस के बल पर चली जा रही थी। जिस समय यह सब घने जंगल में पहुँचे तो एक विकट बवण्डर उठा और धूल के मारे रास्ता चलना बंद हो गया। हाथ को हाथ नहीं सुझाई देता था। थोड़ी देर में मूसलाधार पानी बरसने लगा। बिजली की कड़कड़ाहट और चमाचम ने आँखों में चकाचौंध पैदा कर दी थी। बादलों की गड़गड़ाहट से सम्पूर्ण वन गुञ्जायमान हो रहा था। इस प्रकार की यात्रा में यह दृश्य बड़ा दुःखदायी था।

कुछ समय के पश्चात् सन्ध्या हो चली और जल वर्षा समाप्त होने पर आई। अन्धकार बढ़ता देख आगे बढ़ना सबों ने रोक दिया और पास की पहाड़ी गुफ़ा में ठहर कर आराम करने लगे। इसी वन में शाह अलाउद्दीन के सिपाही भी घूम रहे थे जब उन्होंने इस गुफा में जया को ठहरा हुआ पाया तो अत्यन्त प्रसन्न हुये और अपने सरदार को समाचार देने दौड़े।

इस खबर से सरदार को अत्यन्त प्रसन्नता हुई वह जया को कैद करने की धुन में चल पड़ा और गुफा को चारों ओर से घेर लिया। जब जया को अपने घेरे जाने की खबर हुई तो वह अधिक चिन्तित हुई और अपने कैद करने वाले की अन्य कार्यवाहियों को ध्यान से प्रतीक्षा करने लगी। उसने

यह निश्चय कर लिया कि यदि इस पंजे से छुटकारा न मिला तो अन्तिम उपाय मृत्यु ही है। एक सजी सजाई गाड़ी सामने ला खड़ी की गई। और जया उसपर सवार कराई गई। गाड़ी चली। साथ में सभी मुसलमान सेना दिल्ली को रवाना हुई। कुछ दूर चलने के बाद एक बड़ा दल आता दिखाई दिया। सरदार ने समझा कि मुसलमानी सेना है परन्तु वास्तव में वह राजपूतों का दल था। दोनों दलों में खूब डट कर लड़ाई हुई। राजपूत सरदार ने मुसलमानी सेनापति को अपनी तलवार के घाट उतार दिया। शत्रुसेना तितर-बितर हो भागी। बस राजपूतों को जया के पास जा पहुँचने का अवसर मिल गया।

जया इस समय सबके मध्य में खड़ी हुई इस भीषण मार काट को देख रही थी। यद्यपि रंग रूप से वह इस प्रकार अपनी रक्षा करने वाले को पहिचानती थी परन्तु उसके मुँह से कोई शब्द नहीं निकलता था। दिल में धड़कन पैदा हो गई वह बोलने की इच्छा करती ही थी कि जयपाल झट घोड़े से कूद कर आगे बढ़ा और जया के पास उपस्थित हो बोला—

प्रिये! सौभाग्य है कि तुम बाल-बाल बच गई। आज प्रातः मैंने सुना कि तुम शत्रुओं के फंदे में फँस गई हो तो हृदय घबरा उठा उसी समय तुम्हारी खोज में चल पड़ा और पता लगाता यहाँ तक आया। ईश्वर को धन्यवाद है कि

तुम्हें किसी प्रकार की हानि नहीं हुई। अब मेरी इच्छा है कि तुम जैसलमेर चल कर विश्राम करो।

करुणापूर्ण सजल नेत्रों से जया ने कहा आपने बड़ी कृपा की जो इस आपत्ति के समय काम आये। अन्यथा मैंने लाचार होकर मरने की ठान ली थी। जयपाल की आज्ञा से जया गाड़ी में सवार हुई और राजपूत सरदारों के पहरे में गाड़ी जैसलमेर के मार्ग पर चली। मार्ग में किसी प्रकार का कष्ट नहीं हुआ सकुशल यथास्थान पहुँच गये। जयपाल, जया को अपने सम्बन्धियों के सहारे छोड़ स्वयं दिल्ली जाने को तैयार हुये। इस पर जया को आश्चर्य हुआ। उसने पूछा—क्या? दिल्ली जाने का इरादा है?

जयपाल ने कहा—अवश्य! जया ने कहा तो फिर मैं भी साथ चलूँगी। इस पर जयपाल ने समझाया और जया को महल में छोड़ दिल्ली की ओर चल पड़ा।

इधर जब अलाउद्दीन ने सुना कि जया जाल में फँसकर भी निकल गई तो वह क्रोधित हो उठा। परन्तु कुछ सोच विचार कर जया के पिता के साथ दया भाव दिखलाना आरम्भ कर दिया। एक दिन अलाउद्दीन ने राय रत्न सेन को जेल से अपने पास बुलाया और कहा। क्या तुम को अपने छुटने की इच्छा नहीं है? रत्न सेन ने कहा—प्रत्येक व्यक्ति स्वतन्त्रता चाहता है। दूसरे की स्वतन्त्रता छीनना अत्याचार है।

अलाउद्दीन ने कहा—यदि तुम छूटना चाहते हो तो अपने आप को शाही कृपा का अधिकारी बनाओ। अर्थात् अपनी राजकुमारी जया हमारे महल में भेज दो। बस शीघ्र ही कैद से छुटकारा हो जायगा।

रत्न सेन—क्रोध से काँप उठे और बोले—चुप बदजात! चुप रह। शीघ्र ही इसका फल चखेगा।

अलाउद्दीन ने सिपाही को इशारा किया रत्नसेन फिर तुरन्त बंदीगृह भेज दिये गये और पहिले की तरह अधिक कड़ाई का व्यवहार किया जाने लगा। राजपूती वीरता और धीरता उसके दिल में अवश्य थी परन्तु इस प्रकार की कठोरता के सहन करने की शक्ति न होने के कारण कभी-कभी बादशाह की बात मान लेने का भी विचार कर बैठता था।

इधर जयपाल अपने दलबल के साथ दिल्ली पहुँचा और प्रथम राजा रत्न सेन के देखने की इच्छा प्रकट की। उसे शीघ्र ही यह बात मालूम हो गई कि बादशाह ने आज कल राजा पर अधिक क्रोध किया है। कुछ सोच विचार कर जयपाल ने यहूदी का भेष बना लिया और जेल के जेलर से मित्रता पैदा कर ली और राजा रत्न सेन से मिला देने की इच्छा प्रकट की और कहा यदि राजा ने मेरे जवाहिरात खरीद लिये तो १०) सैकड़ा आपको दे दूँगा। लालच में फँसा जेलर जयपाल को दूसरे दिन राजा के पास ले गया।

जिस कोठरी में राजा रत्नसेन कैद था वह चौकोर परन्तु छोटी थी। सदर द्वार के सिवा प्रकाश और वायु आने का कोई अन्य मार्ग न था द्वार पर एक मजबूत लोहे का फाटक लगा था जिसे खोले बिना कोई व्यक्ति किसी प्रकार बाहर न निकल सकता था।

जयपाल को सन्मुख आता देख राजा रत्नसेन प्रसन्न हो उठे और बोले—क्या तुम बादशाह के पास से आये हो!

जयपाल—नहीं, नहीं! मैं इस यहूदी के भेष से यहाँ तक बड़ी कठिनाई के बाद आ सका हूँ! कैसे आया यह बताने का समय नहीं है। मैंने जेलर से कह दिया है कि राजा के हाथ जवाहिर बेचूंगा। अब मैं यह जानना चाहता हूँ कि बादशाह ने इस प्रकार क्यों कड़ाई की है।

रत्नसेन ने कहा—अलाउद्दीन की इच्छा है कि 'जया' उसके महल में भेज दी जाय। मैंने बादशाह के इस प्रस्ताव को अस्वीकृत कर दिया है इसके फल स्वरूप मेरी आज यह दशा है।

जयपाल—राजन्! आप धैर्य और साहस से कार्य लें इसका बदला उस दुष्ट से अवश्यमेव लिया जायगा।

जेलर दूर पर खड़ा हुआ जयपाल की बातें सुन रहा था। उसको क्रोधावेश में देख कर सन्देह हुआ तो पास आकर कहा—बस-अब अधिक समय नहीं है। यह बात सुन कर जयपाल वहाँ से चल दिया-और तेजी से भागता हुआ जेल

के बाहर चला गया। इस घटना से जेलर को निश्चय हो गया कि यह यहूदी नहीं, कोई बना हुआ व्यक्ति था। उसने अधिक चौकसी के साथ जेल का प्रबन्ध कर दिया।

एक दिन समय पाकर जयपाल ने विचारा कि अब बादशाह के सारे हौसलों पर पानी फेर देना चाहिये। जयपाल नगर से दूर एक स्थान पर ठहरा हुआ था परन्तु इस बात की धुन में लगा रहता था कि किसी प्रकार दुष्ट अलाउद्दीन के वध करने का मौका मिले।

एक दिन सम्पूर्ण नगर में डुग्गी पिटवाई गई कि अगले सप्ताह को बादशाह अपने समस्त राज कर्मचारियों के साथ जंगल में शिकार खेलने जावेंगे। इस खबर से जयपाल को अत्यन्त आनन्द प्राप्त हुआ अब उसकी चिन्ता दूर हो गई। निश्चित दिन बादशाह शिकार के लिये नगर से जंगल की ओर चला इसके साथ फौज और लश्कर का सारा सामान था। जंगल में जाकर शिकार खेलना आरम्भ किया। तीन दिन तक बराबर अनेकों जंगली जानवरों का वध किया गया तीसरे दिन अकस्मात् एक चीते का पीछा करने के कारण बादशाह अपने सिपाहियों से अलग हो गया और चीता भी जंगल में घुस कर गायब हो गया। अधिक थकावट के कारण बादशाह घोड़े से उतर कर एक वृक्ष के नीचे बैठ गया। थका तो था ही बैठते ही उसे आलस्य घेरा ही चाहता था कि पीछे की ओर से सनसनाता हुआ एक तीर

आकर उसकी पीठ पर लगा। इस वेदना से बादशाह मूर्छा खाकर गिर पड़ा। फिर कर देख भी न सका कि उसको इस प्रकार बाण से बध करने वाला आखिर कौन है? जय-पाल इस प्रकार बादशाह को घायल कर मरा हुआ जान जैसलमेर को रवाना हो गया।

जंगल के निवासी एक आदमी ने बादशाह के बदन से तीर निकाल कर दवा लगाई जिसके कारण उसे होश आया और कई दिन उसकी टूटी झोपड़ी में रहने बाद आराम हो गया।

जब बादशाह अच्छा हो गया तो धीरे-धीरे चल कर बस्ती के पास आकर लोगों में यह प्रकट कर दिया कि मैं अलाउद्दीन बादशाह हूँ। शिकार खेलते समय किसी शत्रु ने मुझे घायल किया था और मैं जंगल में पड़ा था।

बादशाह के घायल होने के कई दिन तक उसकी सारी सेना उसकी राह देखती रही जब बादशाह नहीं लौटा तो लोगों ने समझा कि शायद किसी जंगली जानवर ने मार दिया होगा। अतः उसकी जगह रुकन खाँ गद्दी पर बिठाया गया और उसके बादशाह होने की घोषणा कर दी गई।

इसी समय जंगल में घायल अलाउद्दीन ग्राम के समीप अपनी सेना का फिर संगठन कर रहा था कुछ ही दिनों में ५०० जवान उसके हाथ में हो गये। धीरे-धीरे उसने सब के दिल में यह बात जमा दी कि मेरे विरोधी ने जंगल में

मेरी जान इसीलिये ली थी कि वापस आकर गद्दी का हक-दार न बन जाय मेरी हत्या रुकनखाँ के ही षड्यन्त्र का फल है अतः अलाउद्दीन ने उसे वध करने की आज्ञा दी जिसे जल्लादों ने वधकर उसका सिर बादशाह के सामने रख दिया। अब अलाउद्दीन फिर बादशाह हो गया।

गद्दी पर बैठते ही अलाउद्दीन ने फिर राय रत्न सेन को बुला भेजा और जया को शाही महल में देने का प्रस्ताव रक्खा। उन्होंने बादशाह के इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया और एक पत्र भेज कर जया को दिल्ली बुलाने के लिये दूत रवाना कर दिया।

जैसलमेर पहुँच कर जयपाल ने सब को यह समाचार सुनाया कि मैंने बादशाह को मार डाला है, अब कोई खटका नहीं रहा। इधर यह बात हो ही रही थी उधर राजा रत्न-सेन का भेजा हुआ दूत पत्र लेकर आ पहुँचा जिसमें राजा ने लिखा था कि तुम सीधे शाही महल में चली आवो तो मेरा छुटकारा हो जाय।

इस बात को सुन सब के सब हैरान हो गये कि मरा हुआ बादशाह फिर जिन्दा हो गया और राजा को कठोर यातनायें देकर जया को बुलाना चाहता है।

इस बात को, एक तरह से भुलावा देकर जयपाल ने जया की माता से आग्रह किया कि अब शीघ्रही विवाह की रस्म पूरी कर देनी चाहिये। सभी इस प्रस्ताव से सहमत

होगये और जया का विवाह जयपाल के साथ करा दिया गया।

जया सब प्रकार से प्रसन्न थी। कभी २ उसे पिता के कैद होने का शोक उसके दिल को टुकड़े २ कर देता था। इधर कैद में पड़े पड़े राजा रत्नसेन की भी हालत खराब हो रही थी जिन्दगी से नाउम्मेद होकर उसने फिर दूसरी चिट्ठी एक दूत के हाथ बेटी को भेजी और लिखा कि मैं बहुत बीमार हूँ मरने के पहिले एक बार अवश्य देख जा! उत्तर में जया ने पत्र लिख भेजा कि मैं आप की और बादशाह की आज्ञा पूरी करने के लिये शीघ्र दिल्ली आऊँगी जब अलाउद्दीन ने सुना कि जया का पत्र स्वीकृति का आया है तो फूला अङ्ग न समाया उसी दिन से कैद में पड़े रत्नसेन के साथ रहम करने का आज्ञा दे दी। राजा रत्नसेन ने बादशाह को बता दिया कि जया आवेगी तो सही परन्तु उसका विवाह हो चुका है उसका पति भी उसके साथ आवेगा। इस दशा में कुछ अनर्थ होने की सम्भावना है।

अलाउद्दीन ने इस बात पर कुछ ध्यान नहीं दिया और कहा, परवाह नहीं—

नियत समय पर जया की सवारी दिल्ली के फाटक पर पहुँची उसके साथ सहेलियों की बहुत सी पालकियाँ थीं। प्रत्येक पालकी को ४-४ कहार उठाये हुये चल रहे थे। जब सवारी निकट आई फौज में तोप की बाढ़

देकर जया का स्वागत किया गया। सब पालकियाँ कैद-खाने की ओर चलीं। इस कैदखाने की दीवारें दृढ़ और ऊँची थीं सब पालकियाँ उतार दी गईं। सबसे पहिले जया ने एक हथियार बन्द राजपूत को इशारा किया वह क्रुद्ध की तरह दौड़ा इसके बाद प्रत्येक पालकी से राजपूत वीर सशस्त्र निकल पड़े और पहरेदारों पर टूट पड़े। तनक देर में सबको मार सफाया किया एक भी जीवित न बचा। जयपाल उस जत्थे का सरदार था सिंह की भाँति गर्ज कर राजा रत्नसेन के कमरे में प्रवेश किया। रत्नसेन तैयार बैठा था हल्ला गुल्ला को सुनकर द्वार खोल दिया सन्मुख अपने दामाद को पा अत्यन्त प्रसन्न हुआ दोनों गले मिले। जया ने पिता के चरण पकड़ लिये।

जयपाल ने कहा अब विलम्ब न करें नगर के बाहर घोड़े तैयार हैं शीघ्र चलकर सवार हो लें और जैसलमेर की राह लें। यह तीनों उसी क्षण कैद की चहार दीवारी से पार हो गये पहरे पर कोई रोकने वाला नहीं था। फलस्वरूप निशङ्क रूप से निकल गये। और निश्चित स्थान पर आ घोड़ों पर सवार हो चल दिये। जब अलाउद्दीन को खबर मिली और वह पकड़ने के लिये सेना भेजे तब तक यह लोग बहुत दूर निकल चुके थे फिर भी मुसलमानी सेना ने पीछा किया एक स्थान में खूब जमकर युद्ध हुआ। स्वयं जयपाल भी घायल हुआ परन्तु अपने साथियों सहित डटा रहा। बड़ी मार

काट के बाद जयपाल की विजय हुई। मुसलमानी सेन हारकर दिल्ली भाग गई।

राजा रत्नसेन राजकुमारी जया समेत अपने राज्य में आ पहुँचे। इस प्रकार फँसी चिड़िया हाथ से निकल जाने के कारण अलाउद्दीन को बहुत दुख हुआ और इसी शोक में मर गया। इस खबर से चित्तौर और जैसलमेर दोनों में आनन्द छा गया जयपाल और जया सुख-पूर्वक शाँति के साथ दिन व्यतीत करते हुये राज्य करने लगे।

आधुनिक दुर्गा भवानी ।

यद्यपि आर्य जाति का अधः पतन होने के कारण इसके वीरता आदि गुण हीन दशा को प्राप्त हो गये हैं। विशेषतः स्त्रियों में वीरता की बहुत ही कमी होगई है तथापि इस हीन दशा में भी कभी कभी कोई न कोई स्त्री रण-चण्डी के रूप में प्रगट होकर प्राचीन काल की वीरता का दृश्य उपस्थित कर देती है।

आधुनिक दुर्गा भवानी

यह आधुनिक दुर्गा भवानी संयुक्त प्रान्त के प्रयाग, मिर्जापुर बनारस जिले ही के अन्तर्गत किसी जिले की निवासिनी है। विक्रम सम्वत् १९४९ में सुना गया था कि एक ब्राह्मण पुत्री ने अपने सतीत्व के रक्षार्थ एक दारोगा और जमान्दार को कत्ल किया था। बनारस के एक पण्डित जी आगरे आये थे उन्होंने इसका अनुमोदन करते हुए इतना और कहा था कि वह स्त्री सजा से मुक्त कर दी गई थी। जिसकी कथा छन्दों में इस प्रकार है:—

* दोहा *

अजर-अमर अखिलेश प्रभु, शुभमति करो प्रदान।
एक बहिन की वीरता, लिखूँ जगत हित जान॥

(रोला छन्द)

(१)

वर्षा ऋतु आगई गई, ग्रीषम गुरुताई।
चलत पवन शीतल, पुरवाई सुखद सुहाई॥
बीत गया आषाढ़ मास, शुभ सावन आया।
वर्षा ऋतु सौन्दर्य दृश्य, हो गया सवाया॥

(२)

कभी धूप या छाँह कभी वर्षा अति भारी।
छोटी छोटी बून्द कभी लगतीं अति प्यारी॥

कभी घटा घनघोर मोर मन मोद बढ़ावत।
कबहूँ बिजली चमक २ निज दमक दिखावत॥

(३)

नदियन बहे बहीर नीर से भरे सरोवर।
खेती में हो रहे कृषकजन निशि-दिन तत्पर॥
नव पल्लव युत हरितलता तरु लागत नीके।
फूलवती बाटिका ललित चित हरन सभी के॥

(४)

बन में चहुँदिशि छाय रही सुखदा हरियाली।
बाग बगीचे दिखा रहे शुभ छटा निराली॥
आर्य जाति में है प्रचलित यह प्रथा अधिकतर।
सावन में सब सुता विवाहित आवत पितु-घर॥

(५)

सास गेह से पुत्रिन को पितु मातु बुलावत।
मातृ गेह में जाय तीज त्योहार मनावत॥
युक्त प्रान्त का है वृतान्त शुभ सुनो सुजन गन।
सती सुयश अरु बिमल वीर रस से परिपूरन॥

(६)

बीते हैं कुछ वर्ष बात नहिं बहुत पुरानी।
काशी के सन्निकट घटी घटना मरदानी॥
सावन शुक्ला तीज निकट आई अति पावन।
एक विप्र-सुत गया बहिन को बिदा करावन॥

(७)

भगिनी की ससुराल आय कर बिदा कराई।
मातु गेह को चले दोऊ भगिनी अरु भाई॥
पावन कीन्ह पयान नहीं कुछ रही सवारी।
चले जात सुख सहित अहित चित चिन्त बिसारी॥

(८)

उसी मार्ग में बसत एक थाना सरकारी।
तहाँ पुलिस से प्रजावर्ग की थी रखवारी॥
था थाने का द्वार कछुक रमणीक सुहाया।
शीतल जल मद मधुर कूप वृक्षन की छाया।

(९)

तहाँ लेत विश्राम पथिक जन आवत जावत।
चना चबेना खान पान कर श्रम निरवारत॥
आये दोऊ बहिन भ्रात थाने के द्वारे।
पिया नीर विश्राम पाय सब श्रम निरवारे॥

(१०)

आया थानेदार द्वार पर सङ्ग सिपाही।
देवी का सौन्दर्य देखकर मति बौराई॥
बोला थानेदार सिपाही को समझा कर।
लाओ इसको किसी तरह बहला फुसला कर॥

(११)

खुदा कसम इनआम तुम्हें मैं दूंगा भारी।
चली न जावे कहीं खूब करना रखवारी॥

विकल हुआ मतिमन्द शीघ्र थाने में आया।
मिल जुल उसने एक कपट षड्यन्त्र बनाया॥

(१२)

सिर्फ एक ही मर्द साथ में है रखवाला।
उसे कोई तरकीब लगाकर करो निराला॥
थाने में बुलवाय भ्रात को अति धमकाया।
भाँति भाँति के डर दिखाय कर रोब जमाया॥

(१३)

थानेदार—तू है कौन ? कहाँ से लाया–बोल ? लुगाई।
यह औरत है कौन सङ्ग तेरे क्यों आई॥
भाई—भ्राता ने निज ग्राम धाम का पता बताया।
लाया विदा कराय बहिन को कह समझाया॥

(१४)

थानेदार—तू है पक्का चोर चुराकर इसको लाया।
व्यर्थ बहिन का ढोंग बनाकर पाप छिपाया॥
झूठा नाता जोड़ बावलासा बकता है।
बोल सचाई का सबूत तू क्या रखता है॥

(१५)

करता हूँ चालान अभी तू पछतावेगा।
होवेगी जब सजा मजा तू तब पावेगा॥
चालाकी की भरी बात सुनलीं बहुतेरी।
कैसे करें यकीन बात सच्ची है तेरी॥

(१६)

सुनो, सरल तरकीब जल्द होगा छुटकारा।
लाकर एक गवाह मिटा दो वहम हमारा॥
इसी भाँति की बात बनाकर वह उलझाया।
जान बूझकर पथिक झमेले में भरमाया॥

(१७)

जब देखा हो चली साँझ बाकी दिन थोड़ा।
साक्षी लावन हेतु तभी भाई को छोड़ा॥
जिससे यह फिर आज लौटकर पहुँच न पावे।
बीत जाय निशि राह चलत अगले दिन आवे॥

(१८)

विवश हुआ जब भ्रात चित में अति दुख पाया।
भगिनी की ससुराल निकट थी उत को धाया॥
भ्रात गये पश्चात् इधर की कहूँ कहानी।
देवी के ढिग जाय सिपाही बोले बानी॥

(१९)

सिपाही—लेकर निज असबाब चलो थाने के भीतर।
एक कोठरी बीच जायकर करलो बिस्तर॥
देवी—भ्राता आये बिना यहाँ से कहीं न जाऊँ।
अल्प समय की बात यहीं पर बैठ बिताऊँ॥

(२०)

सिपाही—चलत-चलत सब रात भ्रात तेरा थक जैहै।
करिहै कहिं विश्राम आज वह आय न पैहै॥

देवी—भागा ही वह गया शीघ्र ही पहुँच जायगा।
लग-भग आधी रात्रि गये वह अविश आयगा॥

(२१)

सिपाही—तेरा साथी गया, भाग, अब नहीं आवेगा।
वह है पक्का चोर कहीं पर छिप जावेगा॥
देवी—चाहे जब आ जाय रात भर यहीं रहूँगी।
पड़े अनेक विपत्ति खुशी से उन्हें सहूँगी॥

(२२)

रहूँ अकेली वृक्ष तले डर मोहिं न लागत।
तुम मेरी मत करो फिकर बैठी हूँ जागत॥
सिपाही—अइहैं चोर चकार महा दुर्जन दुखदाई।
भूषण वसन छिनाय करहिं कछु मार पिटाई॥

(२३)

देवी—यदि थाने के निकट लूट चोरी अस होवे।
कहो और किस ठौर प्रजा फिर सुख से सोवे॥
सिपाही—क्या हम सारी रात करें तेरी रखवाली।
क्या हमको नहिं और काम कुछ बैठे ठाली॥

(२४)

देवी—तुम निज कारज करो-करो चिन्ता मत मेरी।
मैं रखवाली अपन आप कर लेहुँ घनेरी॥
सिपाही—इका दुका पथिक रात में रहै न बाहर।
यह सरकारी हुक्म चलाया कुछ धमकाकर॥

(२५)

तू चोरी की चीज कहीं को भाग जायगी।
ढूंढ़त फिरिहैं तुझे फेर तू कहाँ पायगी॥
थे पक्के यमदूत धूर्त चालाक चतुरतर।
बातों में नहिं जीति सकी हो गई निरुत्तर॥

(२६)

जान गई दुर्भाग्य 'शाव' अपना नहिं भाखा।
जी में जल भुन भई भस्म, पर, धीरज राखा॥
भये अँगारे नयन बैन सुनकर शठता के।
मानों पीकर रुधिर घूँट बैठी चुप जाके॥

(२७)

पिंजरे पड़ी सिंहनी सी रिस रोक रही थी।
निज रक्षा का उचित यत्न अवलोक रही थी॥
नहिं चक्कू नहिं छुरी धर्म किस भाँति बचाऊँ।
यदि धरती फट जाय ताहि में जाय समाऊँ॥

(२८)

अब बचना अति कठिन फँसी हा? महाजाल में।
अस सङ्कल्प विकलप उठे अति अल्प काल में॥
विवश होय कर भीतर को उठ चली भवानी।
जिमि सीता लंकेश पाश में थी अकुलानी॥

(२९)

तीन चार हिन्दू सिपाहि भी थे कुलघाती।
भये मृतक सम अधम कोई नहिं हुआ सँगाती॥

अगर एक भी ले लाठी ललकार बताता।
तो दुष्टों का दुस्साहस बढ़ने नहिं पाता॥

(३०)

तदपि न भई निराश महा धीरज उर धारा।
इत उत चितवत जात कहीं कछु मिले सहारा॥
झिझक-झिझक पग धरत करत चितमें यह चिन्तन।
लाज धर्म नहिं तजूँ तजूँगी सुख से जीवन॥

(३१)

जान बूझकर चलत चाल धीमी अतिशय तर।
जाही सो मिलि जाय सोचने को कुछ अवसर॥
अन्तिम यही उपाय चित्त में किया सुनिश्चित।
भीतर से साँकल लगाय हो रहूँ सुरक्षित॥

(३२)

बना न बानक सोऊ शोक हिय माहिं करारा।
पहिले ही घुस गया कोठरी में हत्यारा॥

देवी की ईश प्रार्थना—

करुणानिधि कित गये करी क्यों इतनी देरी।
मैं अबला अति दीन हीन लेवो सुधि मेरी॥

(३३)

चले प्राण अरु धर्म दोउ अब देर नहीं है।
तुम्हरे घर में न्याय, नाथ! अन्धेर नहीं है॥
राख लेहु प्रभु! लाज आज दुखियन दुखहारी।
सभी ओर से हूँ निराश अब आश तुम्हारी॥

(३४)

द्रुपदसुतावत् नाथ ! मोहिं अब बेगि उबारो ।
तुम सिवाय नहिं और कोऊ दुख मेटन हारो ॥
क्षण भर में हे नाथ ! आप सब कर सकते हो ।
हो समर्थ सब भाँति मोर दुख हर सकते हो ॥

(३५)

करत-करत अस विनय कोठरी भी निकटाई ।
देवी की उद्वेग वेदना भी अधिकाई ॥
ज्यों ज्यों होवत जात कोठरी अधिक निकटतर ।
त्यों त्यों बढ़ते जात शोक सन्ताप विकटतर ॥

(३६)

देख कोठरी द्वार भाव उपजे उर अन्तर ।
समझ परा यमराज गेह अथवा फाँसी घर ॥
सचमुच है सिद्धान्त अटल यह टरे न टारा ।
"जेहि राखे करतार ताहि को मारन हारा ॥"

(३७)

छिन में प्रभु ने सभी दृश्य उलटा कर दीन्हा ।
अबला सबला करी सबल को निर्बल कीन्हा ॥
ज्यों ही भीतर गई, भई भय रहित भवानी ।
खूँटी पै तलवार देख हिय में हर्षानी ॥

(३८)

अब अबला नहिं रही भई अति प्रबल प्रचण्डी ।
तुर्त म्यान से पकड़ मूँठ खींची खल खण्डी ॥

(३१)

गये शोक सन्ताप रोष ने रङ्ग रचाया।
उग्ररूप धर वीर भाव अतिशय अधिकाया॥

(३९)

एक ही क्षण के लिये आँख शत्रु की झपकी।
खींचन को तलवार तुर्त बिजली सी लपकी॥
फुर्ती करी विचित्र शत्रु ने लखि नहीं पाई।
कब खींची तलवार कबै मारन को धाई॥

(४०)

खैंच खड्ग बेधड़क कड़क वैरी पर टूटी।
चपला सी असि चमक दमक गर्दन पै छूटी॥
गई गले को चाट काट कर दिया सफाया।
रही न चमड़ी लगी शीश तन से बिलगाया॥

(४१)

कौतुक किया विचित्र चरित अद्भुत दर्शायो।
शीघ्रहिं किया प्रहार शत्रु सम्हलन नहिं पायो॥
जान कछु उतपात दूसरा देखन आयो।
ताहू को तत्काल काल के गाल पठायो॥

(४२)

मार दिये मतिमन्द अन्य दोऊ मतवारे।
मानो शुम्भ निशुम्भ*दोऊ राक्षस संहारे॥

---

* नोट—पुराणों में कथा है कि राक्षसों में शुम्भ, निशुम्भ दो बड़े भारी प्रधान थे बहुत संग्राम के पश्चात् देवी दुर्गा ने इन्हें मारा था।

चण्डी भई प्रचण्ड दण्ड दे दले महा खल।
खण्ड-खण्ठ हो गिरे रुण्ड अरु मुण्ड धरातल॥

(४३)

जल विहीन जिमि मीन धरन पर तड़पत दोऊ।
भई कोठरी बीच कीच वह निकला लोहू॥
वीर कार्य में लगा नहीं कुछ काल घनेरा।
अल्प काल के बीच कठिन कौतुक कर गेरा॥

(४४)

पुनि बाहर को चली कुपित चण्डी वह काली।
यथा सिंहनी चले गुफा से रिस सञ्चाली॥
तीन चार कर दिये और घायल हत भागे।
बचे वही जो कूद फाँद इत उत उठ भागे॥

(४५)

जो सन्मुख आगया गया नहिं फेर अछूता।
सन्मुख आकर करे बात अब किसका बूता॥
अति ही हाहाकार मचा थाने के भीतर।
भागे भागे फिरें हुये सब तित्तर बित्तर॥

(४६)

एक सिरे से कर प्रहार सब मार भगाये।
बना न कछू उपाय किसी से, सब घबराये॥
लिये हुये कर माहिं चमकती रुधिर रञ्जनी।
गरजत फिरे सिंहनी सी भू-भार भञ्जनी॥

(४७)

अति असह्य रिस भरी चहुँदिशि चण्डी डोले।
अब किसका सामर्थ्य आय कर उससे बोले॥
यदि कोई कुछ कहे कछुक आगे को जाकर।
झपटत बाघिन सदृश तुर्त तलवार दिखाकर॥

(४८)

पुरुष शून्य कर दिया सभी थाने का थाना।
देख रूप विकराल हृदय सबका दहलाना॥
तोबा तोबा करें सिपाही काँपत थर थर।
कहें दूर से हाथ जोड़कर, जाँय न भीतर॥

(४९)

माफ़ करो तकसीर हुई गलती यह भारी।
तुमसे कछु नहिं कोउ कहै, तुम बहन हमारी॥
पुन पुन बाढ़त रोष वचन सुन दुष्ट जनन के।
अधिक प्रज्वलित होय अग्नि जिमि घृत डालन से॥

(५०)

नहीं किसी को ज्ञात कोठरी में क्या बीती।
किसकी क्या गति भई जान किसकी पर बीती॥
सूर्य्य अस्त का समय हुआ हो चला अँधेरा।
दीप जलावन जाय कौन मृत्यू का प्रेरा॥

(५१)

तुरतहिं एक सवार पुलिस का गया शहर को।

जाकर सब वृत्तान्त सुनाया निज अफसर को ॥
लगभग आधी रात भूात देवी का आया ।
सुनकर सब वृत्तान्त चित्त में अति अकुलाया ॥

(५२)

डाक्टर-सुपरिन्टेण्ट पुलिस, दिन निकसत आये ।
देख दृश्य विपरीत दोऊ अफसर घबराये ॥
घायल अथवा बचे हुये सब जुड़े सिपाई ।
दारोगा अरु जमादार नहिं देत दिखाई ॥

(५३)

नहीं ज्ञात उन दोउ जनों की कछु व्यवस्था ।
होता यही प्रतीत, दोउ मर गये सर्वथा ॥
जाकर देखे कौन कोठरी का अब नाटक ।
काल रूपिणी खड़ी घेर थाने का फाटक ॥

(५४)

देवी का प्रातः कालीन दृश्यः—

नेत्र रोष वश लाल-लाल विकराल हुये थे ।
खड्ग हस्त तन वस्त्र रुधिर से लाल हुये थे ॥
रोष दोष से चित्त अधिक विक्षिप्त हुआ था ।
कुछ थकान कुछ नींद दोष से लिप्त हुआ था ॥

(५५)

शीश उघाड़े हुये स्वयम् कुछ बोल रही थी ।
लिये हाथ में खड्ग चहुँ दिशि डोल रही थी ॥

बीती सारी रात भ्रमत अति श्रान्त भई थी।
जागी सारी रैन दृगन में नींद छई थी॥

(५६)

पुलिसमैन अरु दर्शक जन जो खड़े हुये थे।
मनुज मात्र सब शत्रु रूप ही दीख रहे थे॥

डाक्टर:—

निरखि रूप विकराल डाक्टर ने बतलाया।
समझ परत नहिं कोऊ इसे अब अपन पराया॥

(५७)

रोष-जन्य-उन्माद रोग में ग्रसित भई है।
पागल की सी दशा भई नहिं बात नई है॥
इसके होश हवास ठीक नहिं होवें जब तक।
करो दूर से बात पास मत जाओ तब तक॥

(५८)

जो इसके हाँ हितू वही आकर पुचकारे।
मीठे बचन प्रबोध क्रोध इसका निरवारे॥
सर्जन ने समझाय मुख्य यह बात बताई।
रोष शान्त कर देव यही है सुगम दवाई॥

(५९)

श्वसुर—कुछ आगे को जाय श्वसुर ने कर सम्बोधन।
मीठे बचन सुनाय यथामति किया प्रबोधन॥
देवी! तू धनधन्य भली करनी यह कीन्हीं।
दोनों कुल की लाज आज तैंने रख लीन्हीं॥

(६०)

जो कुछ तैंने किया सर्वथा अच्छा कीन्हा।
दुष्ट जनों को मार पाप का बदला दीन्हा॥
धन-धन तेरे पिता मातु को बहुत बधाई।
धन्य-धन्य वह कुल कुटम्ब जिसमें तू जाई॥

(६१)

डार देव तलवार काम हो चुका तुम्हारा।
यहाँ नहीं अब रहा कोउ दुख देने हारा॥
दिया जिन्होंने दुःख तुझे वे मरे पड़े हैं।
अब मन में मत डरे सभी हम पास खड़े हैं॥

(६२)

सुनत श्वशुर के वचन तुर्त तन्द्रा सब त्यागी।
ये सब कौन यहाँ क्यों आये सोचन लागी॥
हस्त दाहिना खड्ग मूठ में था अति जकड़ा।
बाम हाथ से ढका शीश ऊपर निज कपड़ा॥

(६३)

भाई—भाला ने भी मधुर वचन कह कर पुचकारा।
भगिनी अब मत डरो हुआ दुख दूर तुम्हारा॥
सावधान हो जाहु बहिन धीरज उर धारो।
जो होना था हुआ हिये से रोष बिसारो॥

(६४)

करने लगी विलाप जबै चीन्हा निज भाई।

वीर भाव हो गया विदा, कायरता आई ॥
निज भ्राता को निरख तुर्त गह गले लगाया।
प्रीति विकल हो गई बहिन अति रुदन मचाया ॥

(६५)

मोंहि अकेली छोड़ हाय तू कहाँ सिधारा।
इन दुष्टन को आय हाय तैं काहिं न मारा ॥
रोय रोय अति नयनन नीर बहीर बहाये।
दृगन नीर से धोय धोय सब दुःख सुनाये ॥

(६६)

करुणा क्रन्दन देख हृदय सबके भर आये।
रोक सके नहिं नयन नीर सब अपन पराये ॥
एक ओर अति घोर रौद्ररस दृश्य दिखायो।
कटे पड़े धड़ शीश धरनि पै रुधिर बहायो ॥

(६७)

इत करुणा रस भरी करी सरिता संचारित।
अश्रु रूप धर सर्व दृगन से भई प्रवाहित ॥
निस्सहाय जब हुती आत्म शक्ति परकाशी।
करी खरी करतूत तुर्त निज विपति विनाशी ॥

(६८)

आत्म शक्ति होगई शिथिल जब मिले सहाई।
विमल वीरता और धीरताई बिसराई ॥
संचित होकर रक्त हस्त मुट्ठी भर आई।
बड़े यत्न से खड्ग मूँठ कर से बिलगाई ॥

(६९)

साहब बहादुर :—

साहब सुपरिन्डेन्ट बहादुर धीरज दीन्हा।
मिलिहै तुम्हें इनाम काम यह अच्छा कीन्हा॥
डरने की कुछ बात नहीं बेफिक्र रहो तुम।
जो कुछ तुमसे हुई बात सच सच्च कहो तुम॥

(७०)

सुनी आदि से अन्त तलक सब कुमति कहानी।
फिर साहब ने निज मुख से यह बात बखानी॥
है बिलकुल ही बेकसूर लड़की बेचारी।
बिल-अख़ीर हर तरह अब्र हूआ लाचारी॥

(७१)

बिलकुल ही मजबूर होय तलवार चलाई।
अपनी हुरमत और आबरू जान बचाई॥
हम तुमको देता यकीन है सजा न होगी।
दिल में करो न खौफ जुर्म से बरी रहोगी॥

(७२)

खुशी खुशी से आप लोग अपने घर आओ।
बेफिक्री के साथ तीज त्यौहार मनाओ॥
न्याय निपुणता देख सुजन सब हिय हर्षाये।
साहब का कर धन्यवाद सब घर को आये॥

(७३)

फिर पीछे क्या हुआ-हमें, कुछ ज्ञात नहीं है।
*अख़बारों में यह वृत्तान्त विख्यात् नहीं है॥
जो पापी मर गये उन्हीं के घर दुख दंगल।
निर्दोषिन गृह माँहि शान्ति सुख सुयश सुमंगल॥

लेखक—श्री स्वामी मङ्गलदेव जी साधु।

---

* "आर्य मित्र" ता० २० नवम्बर १९३० ई० पेज ७-८-९ से उद्धृत। आर्य समाज आगरा द्वारा प्रकाशित पुस्तक के आधार पर संशोधित और स्वामी मंगल देव जी साधु श्रीमद्दयानन्द अनाथालय आगरा की आज्ञा द्वारा प्रकाशित।

नीलदेवी ।

नीलदेवी ।

नीलदेवी पाञ्चाल देश के राजा सूर्य्य देव की रानी थी। जो बड़ी सुन्दरी और कोमलांगी थी। पति की सेवा को सर्वश्रेष्ठ धर्म मानती थी। रानी होने पर भी वह साधारण रीति से रहती थी, और पतिगृह सम्बन्धी अथवा राज सम्बन्धी कार्यों में हस्तक्षेप न करती थी। राजा और रानी दोनों में परस्पर बड़ा प्रेम था और दोनों सुखपूर्व्वक राज सुख भोगते थे। दैव योग से थोड़े

दिनों में ऐसा कुसमय आया कि उनपर आपत्ति का पहाड़ टूट पड़ा और उसने उन दोनों को परास्त कर दिया।

अब्दुल शरीफ़ खाँ शूर दिल्ली का सेनापति बहुत दिनों से इस घात में लगा रहता था, कि किसी प्रकार उस राजपूत शूरवीर की स्वतन्त्रता का नाश कर दे और उसके राज्य सम्बन्धी देशों को शाही राजधानी में मिला दे। परन्तु सूर्य्यदेव और उसके क्षत्री वीरों के सामने उसकी दाल न गलती थी। कई बार रणक्षेत्र में उसकी पराजय हुई। कई बार उसको क्षत्री सेना के आगे पीठ दिखानी पड़ी परन्तु शाही राज्य में मनुष्यों की न्यूनता तो थी ही नहीं वह सदैव दृढ़ता से लड़ता रहा और प्रति क्षण उनके दुःख देने का उपाय सोचा करता था। उसने अपने सैनिकों से कई बार कहा कि तुम लोग सूर्यदेव से युद्ध करने की आशा छोड़ कर उसको किसी छल कपट से फन्दे में फाँस लो। सन्मुख युद्ध में तुम्हारी जय होना असम्भव प्रतीत होता है।

सेनापति के निकट कई एक सैनिक कट्टर मुसलमान और अपने मत के दृढ़ धर्मशाली खड़े थे। वह उसकी हाँ में हाँ मिलाते रहते थे और मुसलमानी धर्म का प्रचार करने की धुन में सारी सेना को हिन्दू राजाओं के प्रतिकूल उकसाया करते थे।

अन्त समय अब्दुल शरीफ खाँ ने दिल्ली से अगणित सेना मँगा कर के सूर्यदेव के घेरने का पक्का प्रबन्ध किया। सूर्यदेव

एक सामान्य देश के राजा थे। हिन्दुओं को उस समय भी स्वजातीय उन्नति और स्वजातीय स्वतन्त्रता का कुछ ध्यान था। ब्राह्मण, वैश्य, और शूद्रों को जाति रक्षा के लिये शस्त्र ग्रहण करने की शपथ करनी पड़ी थी। केवल दो चार सहस्र राजपूत शेष रह गये थे जो सूर्यदेव की पताका की छाया में रहकर लड़ते थे, परन्तु उनमें से एक-एक अपने देश के लिये जीवन अर्पण करने को तत्पर थे, और अपने स्वामी के साथ रणक्षेत्र में तृणवत् प्राण देने को उद्यत थे।

जब सूर्यदेव ने सुना कि दिल्ली से घटाटोप सेना आ रही है तो उसने राजपूतों की एक सभा की, और सबसे कहा-"प्रिय मित्रवर्गो! अब क्या परामर्श करते हो, मुसलमानों ने बड़ा अत्याचार मचा रक्खा है।" राजपूतों ने कहा—"जब तक शरीर में प्राण है हम कभी उनके अधिकार में नहीं रहेंगे और न सहज में उनके हाथ में आवेंगे। हमारे साथ ईश्वर है आप धैर्य से काम लें। जिसने कि क्षत्राणी का दूध पिया है वह रण में कभी पीठ नहीं दिखा सकता। जय और पराजय तो ईश्वराधीन है इस पर हमारा कुछ वश नहीं है।"

राजा ने कहा—धन्य हो, वीर पुरुषो! धन्य है तुम्हारा उत्साह! हमारी सेना यदि संख्या में कम है, तो भी शत्रुओं के छिन्न भिन्न करने को बहुत है। एक सिंहराज सहस्रों शृगालों को भगा सकता है। यदि तुम वीरता से संग्राम करोगे तो शत्रु रण-भूमि से पीठ दिखाकर भागेगा।

नीलदेवी-सूर्यदेव की रानी वहाँ उपस्थित थी उसने कहा—"आप महानुभावों की वीरता में कोई सन्देह नहीं है, परन्तु मुसलमानों का युद्ध प्रायः मायाजाल सम्पन्न होता है इसी कारण कुछ भय है।" सूर्यदेव ने उत्तर दिया—कि धोखा धड़ी और माया से शत्रु के साथ संग्राम करना कायरों का का काम है। आर्य वंश के क्षत्री माया से कार्य सिद्ध नहीं करते, वह सोते हुये सिंह पर कभी शस्त्र नहीं चलाते। जब तक उसको निद्रा से जागृत अवस्था में नहीं कर लेते। हम सम्मुख संग्राम करते हैं और निज बाहुबल से शत्रु को परास्त कर देते हैं। यदि प्राणान्त हो जायगा, तो सीधे स्वर्ग को पधारेंगे। यदि जय होगी, तो सत्कीर्ति की ध्वजा संसार-क्षेत्र में फहराती हुई आर्य वंश की अचल वीरता प्रमाणित कर दिखायेगी।"

रानी ने कहा—इसमें कुछ सन्देह नहीं, परन्तु शत्रु से सदैव सचेत रहना चाहिये। बुद्धिमानों का मत है कि प्रत्येक मनुष्य के साथ उचित व्यवहार करना चाहिये। कभी २ मनुष्य अधर्म युद्ध करके भी शत्रु को जय कर लेता है मुसलमान इन बातों में बड़े प्रवीण हैं।" सूर्यदेव ने रानी को धैर्य दिया और कहा—"हम हर एक भाँति शत्रु से लड़ने को उद्यत हैं, तुम कुछ चिन्ता न करो।"

सभा उठ गई सब लोग सोने चले गये, रक्षा के निमित्त रक्षक चारों ओर नियत कर दिये गये। राजपुत्र हर प्रकार

से स्वतन्त्र थे वे इस बात का ध्यान भी नहीं करते कि शत्रु ऐसे अधर्म काम करते हैं कि उन पर अनजाने में कोई घटना घटेगी। इस बात ने देश भारतवर्ष को बड़ी दुर्घटना में डाल दिया वह निद्रा के वशीभूत हो गये।

अर्द्धरात्रि के समय जब सब लोग निश्चिन्त सो रहे थे, अब्दुल शरीफ़ ने सोते हुये राजपूतों पर आक्रमण कर दिया। रक्षकों को इक्षुदण्ड की भाँति काट गिराया, चारों ओर से मार काट की ध्वनि होने लगी। वीरों के सिर धड़ से अलग खटाखट गिरने लगे, और तलवारें बिज़ली की भाँति चमकने लगीं, रणक्षेत्र में रुधिर की नदी बह चली। अब्दुल शरीफ ने सूर्यदेव को बाँध लेने के लिये पहिले ही से मनुष्यों को नियत कर रक्खा था। वह जानता था कि यदि सूर्यदेव सा वीर, परम उत्साही और संग्राम विजयी मनुष्य हाथ आ जायगा तो फिर उसकी सहायतासे समीपवर्ती राज्यों को विजय करना बाल-खिलौना हो जायगा। इसी कारण अब्दुल शरीफ अपनी सेना के महान वीरों को राजा के बाँध लेने के लिये आज्ञा दे रक्खी थी। मुसलमान, राजा के खेमे में आ पहुँचे, वह इस अचानक कोलाहल से चौंक पड़ा। खड्ग हाथ में ग्रहण कर लिया और आक्रमणकारियों का उत्तर देने लगा। परन्तु अन्त को उनके फन्दे में आकर एक कटहरे में (जिसमें लोहे के छड़ लगे थे) बन्द कर दिया गया।

मुसलमानों को उस बन्धन से जो हर्ष हुआ वह लेख

द्वारा प्रकट करना असम्भव है। उनकी कामना पूर्ण हो गई। जिस शत्रु के बाँधने का वर्षों से प्रयत्न हो रहा था वह सहज ही में बाँध लिया गया। अब्दुल शरीफ खाँ के खेमे में से मङ्गलमय दुन्दुभी का शब्द आने लगा, उसकी मनोकामना पूरी हुई। मुसलमान कहते थे—"अलहम्दुलिल्लाह! काफिर को जय कर लिया।

उस रात के शेष घण्टे मुसलमानों ने इसी प्रकार हँसी खुशी में व्यतीत किये।

सूर्यदेव पिंजरे में विवश पक्षी की भाँति पड़ा हुआ है, उसका कुछ वश नहीं चलता। लोहे के छड़ बड़े कठोर हैं। उसको अपनी बेवसी और हिन्दू जाति की दुर्दशा ने चिन्ता रूपी भँवर में डाल दिया ह। हाय! अब क्या होगा, हर जगह मन्दिर गिराये जायंगे, गोहिंसा होगी, कितने ही पुरुष स्त्रियों के रुधिर से पृथ्वी लाल हो जायगी और कितने बला-त्कारों से मुसलमान किये जायँगे। पृथ्वी पापियों के बोझ से दब जायगी। दुष्ट, हिंसक अन्यायी अधर्मी और कामी मनुष्यों से भारत प्रदेश मिट्टी में मिल जायगा। वह इसी चिन्ता में पड़ा हुआ था, उसकी आँख लग गई, और भया-नक स्वप्न देखने लगा। जिसमें एक मनुष्य आर्त स्वर से विलाप कर रहा है जिसे सुनकर सूर्यदेव चौंक पड़ा। क्या सचमुच अब हिन्दुओं का राज्य नहीं रहेगा? क्या हिन्दू ऐसे अधर्मी अन्यायी और पापी हो जायँगे, कि अन्य मतावलम्बियों

से मिलकर धर्म के मार्ग को त्याग देंगे। हाय! हाय! भारत तेरे भाग्य में क्या लिखा है? जब इधर उधर देखने लगा कोई मनुष्य न दिखाई दिया, तो मन ही मन सोचने लगा—हे ईश्वर! यह किसकी आर्तवाणी है।

इतने ही में दूसरी ओर से अब्दुल हमीद खाँ काज़ी सहस्रों मुसलमानों के साथ आते दिखाई दिया। सूर्यदेव चुपचाप उसकी बाट देखता रहा। इतने में ही वह सब के सब निकट आ पहुँचे। काज़ी ने हँसी से कहा—'राजा साहब! कहिये क्या हाल है, सूर्यदेव ने उत्तर नहीं दिया। काजी फिर सन्मुख होकर बोला—मुझको सिपहसालार (सेनापति) ने आपके पास भेजा है, यदि आपको अपना जीवन प्यारा हो, तो मुसलमान होना स्वीकार कीजिये। और बादशाही इज्जत प्राप्त कीजिये।

राजा इस अन्तिम वाक्य को सुनकर क्रोध में आगया। राजपूती ज्वाला भभक उठी; उसने कहा—अब्दुलशरीफ़ से जाकर कहो, यह संदेश उस समय मुझको सुनावे जब मैं स्वतन्त्र होऊँ और मेरे हाथ में खड्ग हो। धर्म से अधिक प्यारी वस्तु संसार में कोई नहीं है, वह प्राण से बहुमूल्य है। राजपूत अपना धर्म देकर सांसारिक सुख कभी मोल नहीं लेता, अब तुम मेरे आगे अनुचित बात न करो, मेरे पास से चले जाओ।" काज़ी ने विचारा कि राजा बेबस है, क्या कर सकता है। उसने फिर ऐसी कोई बात नहीं कही कि

जो राजा को अनुचित ज्ञात हो। परन्तु राजा सूर्य्यदेव उस समय क्रोधाग्नि को शान्त न कर सका था। उसने लोहे के पिंजड़े को अपने बाहुबल से तोड़ डाला, और छड़ लेकर मुसलमानों पर टूट पड़ा। मुसलमान उससे लड़ने को उद्यत नहीं थे परन्तु तौ भी राजा ने सत्ताईस यवनों को केवल छड़ से मार गिराया और पश्चात् आप भी जूझ कर स्वर्गधाम को चला गया।

जिस समय राजा के मृत्यु की सूचना नीलदेवी को मिली तो वह फूट फूट कर रोने लगी। पति की अनुपस्थित हिन्दू स्त्रियों के लिये प्रलय का दिन होता है, संसार उसकी आँखों में अँधेरा हो गया। खेमे में सन्नाटा छा गया। राजकुमार सोमदेव उसका पुत्र और दूसरे राजपूत उसको धैर्य देने लगे—" माता धीरज से काम ले " राजा ने रणभूमि में प्राण त्याग किया है। क्षत्री के लिये इससे अच्छी क्या बात हो सकती है।" यदि वह स्वर्गधाम को गये, तो मैं उसका पुत्र, शत्रुको विजय करने को जीवित हूँ। कुछ सोच करने की बात नहीं। हम अभी जीवित हैं। और अब्दुल शरीफ़ को इसका स्वाद चखाते हैं।

राजा की मृत्यु, सोमदेव का उत्साह और रानी का विलाप, देखकर राजपूतों के हृदय में क्रोधाग्नि की प्रचण्ड ज्वाला भड़क उठी। सबके होठ काँपने लगे और सब ने परस्पर प्रण किया कि जब तक हम अपने राजा का बदला न

लेंगे खान पान कदापि न करेंगे। बस! उसी समय से केसरिया वस्त्र धारण किये, जिसका तात्पर्य यह है कि अब अन्त समय है या तो शत्रु को परास्त करेंगे और नष्ट करेंगे, या क्षत्री वीरों की भाँति रणक्षेत्र में प्राण त्याग देंगे।

सोमदेव ने वीरों का उत्साह देखकर कहा—"धन्य हो आर्य वीर पुरुष गण! अब तुम में ऐसी वीरता है भारत माता को किसी आपत्ति का दिन न देखना पड़ेगा। धिक्कार है उन हिन्दुओं पर जो अन्य देश वालों से मिलकर अपनी जाति को मूल से नष्ट कर देते हैं। वह जाति विरोधी पापी नर्कगामी हैं कभी मनुष्य कहलाने के अधिकारी नहीं हैं। मनुष्य तुम हो जिनको अपने देश का धर्म का और जाति का ध्यान रहता है। तुम्हारी सन्तान का जब तक एक भी सपूत रहेगा भारत कभी निर्वंश नहीं होगा। और हम आर्य जातीय गौरव की पताका संसार क्षेत्र में स्थिर करने के योग्य होंगे। चलो अभी शत्रु के रुधिर से पृथ्वी को लाल कर दें और जगत में यश के भागी हों।

इस वार्तालाप के पश्चात् राजपूतों ने जय जयकार की ध्वनि आरम्भ कर दी। राजा सूर्यदेव की जय, युवराज सोमदेव की जय, रानी नील देवी की जय। नील देवी अपने पुत्र तथा राजपूतों की बातें सुनती रही। वह उनके पुरुषार्थ और साहस को देखकर प्रसन्न थी परन्तु सब सुकुमार थे। उसने अपने नेत्रों का जल पोंछते हुए कहा—"स्वस्तिरस्तु!

भारत सन्तान चिरंजीव भव! वीरो ठहरो! मैंने शत्रु के जय करने का कुछ और ही उपाय सोचा है और इस समय मैं तुम्हारी सरदार हूँ, चेतना! मेरी आज्ञा बिना कोई काम न करना और इसी प्रकार सुसज्जित खड़े रहना! एक पहर रात के व्यतीत होने पर तुम्हारी आवश्यकता होगी। यह कह कर उसने बेटे के कान में कुछ कहा और फिर खेमे में चली गयी।

सन्ध्या का समय है अब्दुल शरीफ खाँ का दरबार लगा हुआ है बाजों के संग सुरीली तान में गान हो रहा है मदिरा का प्याला ढल रहा है सब नशे में गड़ागप्प हैं सब के सब नाच रंग में मतवाले हो रहे थे। इसी बीच एक मनुष्य ने आकर सेनापति को सूचना दी कि पृथ्वीनाथ! एक बड़ी सुन्दरी कोकिलबैनी गाने वाली स्त्री आई है और आप को धन्यवाद देती है। आज्ञा हुई कि उसको शीघ्र लाओ फिर क्या था कुछ ही देर में एक सुकुमारी मृगनैनी पिकबैनी अंचल सँभालती मंद मंद मुसकाती हुई सेनापति के सामने आई वह उसको देख प्रसन्न होकर बोला,—तुम्हारा क्या नाम है?

स्त्री—हजूर मुझे लोग चण्डिका कहते हैं।

सेनापति—नाम तो बड़ा अच्छा है।

स्त्री ने सिर झुकाकर सलाम किया। फिर आज्ञा हुई अच्छा, अब कुछ गाना सुनाओ। स्त्री ने सितार का सुर मिलाकर गाना आरम्भ किया और ऐसा उत्तम गाना गाया—

कि सब के सब मतवाले होकर झूम पड़े। अहा कैसा सुरीला गाना है, यह कंठ मदमोचनी राग किसी ने न सुना होगा। दरबारी लोग सभापति की बातें दुहराने लगे। सेनापति ने अंगूठी देना चाहा—चण्डिका ने कहा! हजूर ठहरो मुझे तो आज आप से बहुत कुछ इनाम लेना है, अन्त समय सब कसर निकाल लूँगी।' इसके बाद एक लच्छेदार टप्पा छोड़ दिया। अमीर ने बड़ी प्रसन्नता से कहा—आज प्रीतम वियोग और विछोह की लय छोड़ो। आज मंगलाचार का शुभ दिन है मेरे निकट आ जाओ। स्त्री—अब्दुल शरीफ के पास जाकर गाने लगी। जिसे सुन कर अमीर ने कहा अहा हा! क्या फड़कता हुआ गाना है यह लो तुम भी एक प्याला पियो। चण्डिका ने हाथ बांध कर कहा—हुजूर हम लोग शराब नहीं पीती! शरीफ ने कहा—अजी वाह! क्या सचमुच शराब नहीं पीती हो?

चण्डिका—नहीं हुजूर कभी नहीं।

सिपहसालार—पर आज तो तुम्हें अवश्य पीना होगा।

चण्डिका—जो हुक्म सरकार का।

सिपहसालार नशे में चूर हो रहा था। उसने स्त्री को और आगे बढ़ने के लिए इशारा किया। वह और भी निकट जाकर बैठ गई, एक तो शराब का नशा था ही दूसरे चण्डिका के दृष्टि की काम कटारी से वह और घायल हो रहा था। जब वह गाने लगती यह उसके चन्द्रमुख को

चकोर की भाँति ताकने लगता था, एक बार फिर कहा अब इसको पी लो ! चण्डिका ने कहा 'ईमान की बात तो यह है कि मैं इसे नहीं पीती हूँ "आप अधर्म न सिखलावें," परंतु सिपहसालार ने हठ से कहा—हमारी खातिर से पियो ! जैसे प्याला लेकर वह आगे को बढ़ा कि चण्डिका की कमर से बिजली की भाँति चमकती हुई तलवार ने एक हाथ से नर पिशाच का सिर काटकर अलग कर दिया। सभा का रंग भंग हो गया। सबका नशा काफूर हो गया। मंगल में अमंगल हो गया। इतने में चण्डिका ने सीटी बजाई जिस का शब्द सुनते ही शस्त्रधारी केसरिया वस्त्र आभूषणों से सज्जित राजपूत चारों तरफ से टूट पड़े। मतवाले मुसलमान एक एक करके मारे गये, सबको मार काट कर चण्डिका राजपूतों के साथ खेमे में लौट गई। फिर जय जयकार का शब्द होने लगा। महाराज सूर्यदेव की जय ! राजकुमार सोमदेव की जय !! महारानी नीलदेवी की जय !!! यह चण्डिका वास्तव में नील देवी ही थी उसने राजपूतों को सम्बोधन करके कहाः—

ऐ भारत सपूतो ! धन्य हो तुमने इस आड़े समय में काम आकर मेरी सहायता की है उसके लिए मैं तुम्हें धन्यवाद-देने के योग्य नहीं हूँ। अब एक और अर्ज मेरी है कि शीघ्र ही एक चिता चुन कर तैयार करो कि जिसमें मैं अपनी छाती ठंडी करने के लिए पति का शीश अपनी गोद में लेकर जल मरूँ।

चिता उसी क्षण तैयार हो गई। नील देवी ने सूर्य देव के मृतक शरीर को गोद में रख लिया। सब के पहिले राजकुमार सोमदेव ने अपनी माता की चरण बन्दना की। तत्पश्चात् सब राजपूतों ने उसकी पूजा की। महारानी ने सब को आशीर्वाद दिया राजपुत्र धर्म न त्यागना, धर्म के लिए प्राण दे देना धार्मिक जीवन व्यतीत करना, जाति धर्म और देश की लज्जा रखना अपने भाइयों को नाश करने के हेतु यवनों से न मिल जाना, अपनी मर्यादा और क्षत्राणी के दूध को न लजाना, ईश्वर तुम्हारा भला करेगा!

बात खतम होते ही चिता से अग्नि धधक उठी और सब के देखते ही देखते नीलदेवी की आत्मा शान्तिमय वायुमण्डल की ओर सिधार गई।

महारानी दुर्गावती

महारानी दुर्गावती

मध्यप्रदेश का प्राचीन नाम गोंड़वाना है क्योंकि उस समय उस प्रदेश में गोंड़ों की बस्ती बहुतायत से थी और वे ही वहाँ के अधिपति थे। जबलपुर से तीन मील की दूरी पर 'गढ़ा' नगर में उन लोगों की राजधानी थी। अब यह नगर गोंड़ राज्य का वह 'गढ़ा' नहीं रहा। आज यह एक छोटा सा गाँव रह गया है। परन्तु इस उजाड़ अवस्था में भी यह

अपने पूर्व वैभव की साक्षी दे रहा है। मुगलों के समय में गोंड़ लोग अपनी राजधानी 'गढ़ा' से हटाकर 'मण्डला' में ले गये। तब यह राज्य 'गढ़ा मण्डला' कहलाने लगा। आज मण्डला भी अपने उस वैभव को रो रहा है। गोंड़ राजाओं के समय के कई किले तथा महल अब भी इस प्रांत में पाये जाते हैं। मदन महल उस समय की एक प्रशस्त इमारत है। उसे लगभग आठ सौ वर्ष पहिले मदनशाह नामक गोंड राजा ने बनवाया था। यह जबलपुर से पाँच मील दूर पहाड़ की एक सुदृढ़ चट्टान पर स्थित है। और आज भी ज्यों का त्यों उन्नत मस्तक खड़ा है। पन्द्रहवीं शताब्दि में नरसिंहपुर जिले में महाराज संग्रामसिंह ने चौरागढ़ किला बनवाया था। इस किले में गोंड़ों ने कई बार मराठों मुसलमानों तथा बुन्देलों से अपनी स्वतन्त्रता के लिये युद्ध किया था। महारानी दुर्गावती इसी संग्रामशाह के पुत्र दलपतिशाह की पत्नी थी। उन्होंने महोबे के क्षत्रिय राजा चन्देले के यहाँ जन्म लिया था। दलपति शाह गोंड़ थे और चन्देले राजपूत। इस लिये चन्देल उन्हें अपनी बेटी ब्याहने के लिये सहमत न थे। पर जब दलपति शाह ने उन्हें बहुत दबाया। तब उन्होंने दलपति से भयभीत हो उनसे अपनी रक्षा का वचन ले बेटी विवाह दी। दलपति शाह अपनी राजधानी 'मण्डला' से उठाकर दमोह जिले के 'सिंगौरगढ़' में ले आये और वहीं दुर्ग में महारानी सहित

आनन्द से रहने लगे। थोड़े ही दिन पश्चात् महारानी का सौभाग्य सूर्य्य अस्त हो गया। विवाह के पाँच वर्ष पश्चात ही महाराज दलपति शाह महारानी की गोद में चार वर्ष के वीरनारायण नामक बालक को छोड़ परलोक वासी हो गये। महारानी पुत्र का मुख देख तथा अपनी प्रजा का भावी संकट विचार पतिके साथ सती न हुई और यह उचित भी था। ये पुत्र के नाम से गद्दी पर बैठ राजशासन करने लगीं। दुर्गावती बड़ी गुणवती और वीरांगना थीं वे सदा देश की स्थिति तथा राज कार्यों पर सूक्ष्मता से ध्यान दिया करती थीं। सदैव उन्हें इस बात का ख्याल रहता था कि किस बात में प्रजा का हित होगा। वे सदा अपने राजकर्मचारियों को उनके कर्त्तव्य के अनुकूल उपदेश दिया करती थीं। उनके राज्य में न कभी कोई आपदा ही आती और न कभी दुर्भिक्ष ही पड़ता था। प्रजा सुख चैन से अपने दिन बिताती थी। महारानी ने पन्द्रह वर्ष तक निर्विघ्नता पूर्वक राज किया। इतने समय में राज्य में धन्य धान्य की इतनी उन्नति हुई थी कि प्रजा अपना लगान मुहरों में चुकाती थी। जान पड़ता है महारानी ने अपनी प्रजा को शायद स्वराज्य दे रखा है, बिना इसके इतनी उन्नति होना असम्भव जान पड़ता है।

जो कुछ भी हो प्रजा महारानी पर असीम भक्ति रखती थी महारानी ने प्रजा की भलाई के लिये अनेक अच्छे अच्छे

कार्य किये थे। जबलपुर का महारानी ताल दुर्गावती ने ही बनवाया था। यह अभागा सरोवर आज भी अपनी टूटी फूटी दशा में महारानी की याद दिलाया करता है। वह जमाना शाहन्शाह अकबर का था। वे और उनके सरदार भारत में मुग़ल साम्राज्य की नींव दृढ़ करने का प्रयत्न कर रहे थे। प्रतिदिन एक न एक राज्य पर उनके हमले होते ही रहते थे। गंगा के किनारे कड़ा मानिकपुर नाम का एक मुग़ल सूबा था। उसके सूबेदार का नाम आसफ़ खाँ था। उसने गढ़ा मण्डला की सम्पत्ति का समाचार सुनकर कई बार मध्य प्रदेश पर हमले किये और प्रजा पर खूब अत्याचार किये। पर महारानी के सामने हर बार उसे मुँह की खानी पड़ी। लाचार होकर उसने अकबर को भड़काया। उसकी बातों से अकबर बादशाह बहुत खुश हुये। अकबर ने आसफ़ खाँ को मध्य प्रदेश पर प्रचंड धावा करने की आज्ञा दी। शाही सहारा पाकर आसफ खाँ फूल उठा। सन् १५६४ ई० में उसने कोई ७०००० सेना लेकर गढ़ामण्डला की ओर कूच किया। गढ़ा मण्डला की प्रजा इस विपद् समाचार से घबड़ा उठी। जिसे जहाँ जगह मिली भागने की कोशिश करने लगा। प्रजा को दुखी देख महारानी कर्तव्य पथ पर आरूढ़ हुईं वे जरा भी निरुत्साहित न हुईं बल्कि द्विगुणित उत्साह से युद्ध की तैयारी करने लगीं।

महारानी कवच धारण कर तथा धनुष बाण और तल-

धार ले हाथी पर सवार हो १५०० हाथी और ८००० सेना के साथ 'सिंगोरगढ़' के किले से निकलीं और मुगल सेना के सामने जा डटीं। भयंकर युद्ध प्रारम्भ होगया। मुगल लोग समझते थे कि हमारी सेना के सामने एक मामूली औरत जिसके पास थोड़ी सी फौज है कबतक ठहरेगी। आखिर उसे हारना ही पड़ेगा। महारानी की वीरता देख गोंड़ लोग अपनी मातृभूमि की रक्षा के लिये बड़े ही उत्साह से लड़ते थे। दुर्गावती साक्षात रणचंडिका महारानी दुर्गा का रूप धारण कर युद्ध करतीं तथा सेना को आज्ञा देती थीं। उनकी यह प्रलयंकरी मूर्ति तथा गोंड़ों का प्रचण्ड उत्साह और अद्भुत रणकौशल देख मुगलवाहिनी धधरा उठी। उस समय गोंड़ वीर जान पर खेल रहे थे। मुगलों के ६००० जवान खेत रहे और उनकी सेना में भगदड़ पड़ गई। गोंड़ों ने उनका पीछा किया। रणचंडिका ने दुर्गा पर प्रसन्न हो उन्हें विजयमाला प्रदान की। संध्या होते ही महारानी ने अपनी सेना को विश्राम करने की आज्ञा दी। उनका विचार था कि रातोंरात मुगल सेना पर आक्रमण किया जाय। इसलिये थोड़ी रात गये वे कुछ सैनिक लेकर आगे बढ़ीं। पर आलस्य बस शेष सेना ने उनका साथ न दिया। गोंड़ समझ रहे थे कि मुगल लोग दोबार मुंह की खा चुके हैं वे अब क्या हमला करेंगे। तब हम ऐसी सुख की नींद छोड़ रात में क्यों यह कष्ट करें। लाचार हो महारानी को उनकी

बात माननी पड़ी वे लौट आईं। गोंडों का यह आलस्य उनके गले पड़ गया। उनकी बर्बादी तो हुई ही मध्य प्रदेश की भी स्वतंत्रता सदैव के लिये नष्ट हो गई।

आसफ खां महारानी से इस प्रकार हार खाने पर लज्जा और क्षोभ से मन ही मन जल रहा था। बदला लेने की फिक्र उसे चूर किये डालती थी। अपने गुप्तचर से गोंड़ सेना के विश्राम की खबर पा आसफ खाँ मन ही मन बड़ा प्रसन्न हुआ। दगाबाजी से सूर्योदय के पहिले ही उसने सोती हुई गोंड़ सेना पर धावा बोल दिया। यकायक इस प्रकार विपत्ति आई देख गोंड़ लोग घबरा उठे। महारानी को भी कोई उपाय न सूझ पड़ा। यह देख अठारह वर्ष के वीर नारायन ने स्वयं ही सेनापति बन मुगलों से युद्ध आरम्भ कर दिया। क्षत्रिय बालक का अतुलित पराक्रम देख मुगलों के होश गायब हो गये। वीर नारायन ने प्रकृत वीर की तरह युद्ध कर दो बार मुगलों को पीछे हटा दिया। अब तीसरी बार मुगलों ने भीमवेग से वीर नारायण पर आक्रमण किया। वीर नारायण ने कोशिश तो बहुत की, पर वह इस वार को सँभाल न सका। आहत हो धरती पर गिर पड़ा। प्रिय पुत्र को इस प्रकार गिरता देख महारानी तनिक भी अधीर न हुईं। शीघ्र ही उचित प्रबन्ध कर उन्होंने वीर नारायन को चौरागढ़ के किले में भेज दिया। दुर्गावती ने समुद्र के समान उमड़ती हुई सेना पर सिंहनी के समान

गर्जना कर भीषण आक्रमण किया। उन्होंने बहुत समय तक साहस पूर्वक युद्ध कर सैकड़ों को सदैव के लिये भूतलशायी कर दिया। पर अन्त में उनकी सेना मुगलों की तोपों के सामने अधिक काल तक न ठहर सकी। लाचार हो आपदा को आपदा न समझने वाली महारानी दुखित चित्त से सब सेना एकत्र कर 'गढ़ा' की ओर लौटीं।

युद्ध के लिये योग्य स्थान न पा वे 'मण्डला' की ओर बढ़ीं। गढ़ा से पूर्व बारह मील की दूरी पर एक तंग घाटी में ठहर गईं और शत्रु के आने की प्रतीक्षा करने लगीं। थोड़ी ही देर में उनकी सेना पर मुग़लों की तोपें अग्नि की वर्षा करने लगीं एकायक एक तीक्ष्ण बाण ने आकर महारानी की आँख को बेध दिया उन्होंने वह बाण तुरन्त ही निकाल कर फेंक दिया। पर उसकी अनी टूट कर आँख में ही रह गई। इस घोर कष्ट की ज़रा भी परवाह न कर वे अटल हो युद्ध करती रहीं। देखते ही देखते एक तीर उनके कंठ में आ लगा। अनन्त कष्ट के कारण वे अधीर तो अवश्य हो गईं, पर उन्होंने रण से पीठ दिखाना अनुचित समझा। वे जानती थीं कि मेरे हटते ही सेना निराश हो जायगी। अतएव वे अपना कष्ट भूल, सैनिकों को उत्तेजना देने लगीं। महारानी की दशा देख उनके महावत ने उन्हें बहुत समझाया कि आप 'मण्डला' को लौट चलिये पर उन्होंने कहा मैं अपने ज़रा से सुख के लिये अपने प्राण बचाकर युद्ध से भागना नहीं

चाहती। यह क्षत्रिय धर्म के विरुद्ध है। क्या तुम क्षत्रिय नहीं? खबरदार! क्षत्रिय कन्या समर में सम्मुख हो प्रसन्नता से प्राण दे देती है। भागना कैसा? क्या कोई भी मनुष्य मनुष्यता रहते अपनी मातृभूमि को मंझधार में छोड़ सकता है। मैं आज तुम लोगों की यह रक्तरंजित तलवार देख अपना कष्ट भूल गई हूँ। इतने ही में मुगल सेना आ गई। इस पवित्र देह को मुगल न छूने पायें ऐसा विचार कर महारानी ने शीघ्र ही महावत के हाथ से कटार छीन अपने छाती में भोंक ली। क्षतस्थान से खून की धारा बहने लगी देखते ही देखते वीरबाला का प्राणपक्षी तन पिंजरे को छोड़ उड़ गया। भारत माता का एक अनमोल मोती मिट्टी में मिल गया। जो गोंड़ वीर बचे वे भी पीछे न हटे। उन्होंने मरते मरते भी भयंकर युद्ध किया। पर स्वतन्त्रता छोड़ परतन्त्रता से प्रेम न किया। इसके बाद नवाब ने चौरागढ़ पर आक्रमण किया। वहाँ वीर बालक वीर नारायण पहले से ही युद्ध के लिये तैयार बैठा था। उसने दो महीने तक जमकर युद्ध किया। स्वतन्त्रता के लिये युद्ध करते करते वीर बालक ने प्रसन्नता पूर्वक स्वर्ग की यात्रा की। अब सैन्य सञ्चालक कोई न रहा। अतः मध्य प्रदेश सदैव के लिये पराधीनता के गड्ढे में गिर गया। जिस स्थान पर महारानी का देहान्त हुआ उसी स्थान पर उनकी अन्तिम क्रिया की गई। युद्ध के पश्चात् उनकी स्मृति में वहाँ पर एक चबूतरा बनवाया गया।

यह चबूतरा अब भी वर्तमान है। जिसमें युद्ध का सम्पूर्ण विवरण लिखा हुआ है। चबूतरे के पास से जो यात्री गुजरते हैं वे महारानी की याद में पास ही पड़े हुए चमकदार कङ्कड़ों में से एक कङ्कड़ उठाकर चढ़ा देते हैं, और महारानी की वीर पूजा करते हैं। यद्यपि महारानी के बाद भी यह प्रान्त गोंड़ों के आधिपत्य में रहा। पर वे मुगलों की आधीनता स्वीकृत कर उन्हें 'कर' देने लगे थे।

कर्मदेवी ।

कर्मदेवी ।

जब जयमल का स्वर्गवास हो गया केवल उसका एक पुत्र 'फत्ता' ही रह गया इस दशा में दरबार करने की किसे सुध थी इधर यह लोग शोक सागर में डूब रहे थे उधर अकबर रात में धावा कर किले में चढ़ाई करने का विचार ठान लिया और रातों रात मुगल सेना ने किले के फाटक पर चढ़ाई कर दी। इतने ही में एक १६ वर्ष का युवक क्रोध में भरा हुआ उठ खड़ा हुआ। और बोला—

हाय ! मेरे रहते हुये चित्तौर शत्रुओं के हाथ में जाय ! यह मैं देख नहीं सकता । यही जयमल का प्यारा पुत्र 'फत्ता' था जो अपनी माता की आज्ञा से पिता का धर्म पालन करने पर उद्यत हुआ ।

कर्म देवी ने खुश होकर पुत्र को युद्ध के सब सामान और वस्त्र आदि पहनाये और कहा—'जा बेटा !' आज मेरे दूध का प्रताप युद्ध क्षेत्र में दिखा । 'फत्ता' माता से बिदा लेकर अपनी स्त्री कमला से मिला । उसने हँसते २ कहा—स्वामिन् ! चलो ! अब स्वर्ग में मिलेंगे ।

'कर्णावती' 'फत्ता' की बहिन थी । दौड़ी आई और भाई के गले लिपट गई और बोली ? ऐ वीरवर ! तेरे म्यान में तलवार लटकाना मेरा कर्त्तव्य है । ला तलवार मैं बाँध दूँ ।

इस प्रकार वह युवक 'फत्ता' अपने तीन प्यारे सम्बन्धियों से मिलकर युद्ध क्षेत्र में आ डटा । थोड़ी ही देर में घनघोर युद्ध छिड़ गया, क्षण मात्र में खून की धारा बह चली ।

इस प्रकार लड़ते लड़ते दोपहर हो गयी । अकबर अपनी सेना की दशा देखता हुआ उस स्थान पर आ पहुँचा । जहाँ फत्ता से युद्ध हो रहा था । 'फत्ता' केवल बालक ही न था वरन् वह भी बड़ा चालाक दूरन्देश और समयानुसार काम करने वाला युवक था ।

सामने एक पहाड़ी गुफा दिखाई दी । उसके आगे कई

घमे युद्ध लगे हुये थे। इन्हीं झाड़ियों के बीच से गोलियों की बौछार अचानक होने लगी। अकबर ने चकित हो चारों तरफ देखा। इन्हीं में आड़ पाकर तीन राजपूत सिपाही मुगल सेना को अपना निशाना बना रही थीं। जिन्हें देखते ही अकबर कांप उठा और बोला--या अल्लाह यह किस्सा, और या धीवना!

एक बार कालिंदी जमालाबादी गोर कर्णसिंह पानी बीना का परिचय पाकर वह रही थी दूसरे और बिना बाद करता हुआ 'काला' अब्दुल को निर्बन्ध कर रहा था।

जनता ने जब यह देखा कि अकबर उनकी ओर बढ़ा आ रहा है तो उनमें महान आतंक छा गया। इसी बीच वीरांगना स्त्रियाँ झाड़ियों से निकल कर, बिजली की भाँति तलवार चमकाती हुई मुगल सेना पर टूट पड़ीं और शत्रुओं का संहार करने लगीं। परन्तु यह अवस्था कब तक रहती। संध्या के पहिले ही वे चारों पवित्र आत्माएँ देश-निर्मित पर बलिदान हो गईं। उनका पृथ्वी पर गिरना था कि एक धड़ाके का शब्द हुआ। कोट सुरङ्ग से उड़ गया हजारों स्त्रियाँ लोक लाज और धर्म रक्षा के लिये जीते जी चिताओं में बैठकर स्वर्ग चली गयीं। इस प्रचण्ड ज्वाला को देख अकबर भौंचक्का सा रह गया और अपना मुँह लेकर दिल्ली लौट आया।

तुलसी बाई।

तुलसी बाई

जिन दिनों दक्षिण में मरहठों की तूती बोल रही थी और मुगल सल्तनत का पाया डगमगा रहा था उन दिनों पुरुषों के सिवाय अनेक वीर महिलाओं ने भी अच्छी वीरता दिखाई थी। तुलसी बाई ऐसी ही महिलाओं में से एक थीं। इतिहास से उनके जन्म-स्थान तथा पूर्व पुरुषों का तो कुछ पता नहीं लगता केवल इतना ही मालूम होता है कि वह एक प्रसिद्ध महाराष्ट्र घराने की

महिला थीं। उनके पति एक नामी सरदार थे और उनके पास सेना थी।

उन दिनों मरहठे वीर मुगल प्रदेशों से 'चौथ' वसूल करने लगे थे। चौथ एक प्रकार का 'कर' था जो कुल आमदनी का चौथा भाग होता था। एक दिन तुलसी बाई के मन में लहर आई कि मरहठे लोग तो चारों ओर अपने बल विक्रम का परिचय दे ही रहे हैं। ऐसे समय में हमें भी कुछ वीरता का कार्य करना चाहिये। बस, उन्होंने फौरन वीर भेष बनाया। घोड़े पर भाला लेकर सवार हुईं और अपने साथ कई हजार वीर मावलों को लेकर निकल पड़ीं। उन दिनों दक्षिण में मावलों की तूती बोल रही थी। वे बड़े ही योद्धा थे। बड़े ही वीर थे। उनका नाम सुनते ही बड़े-बड़े वीरों के हौसले पस्त हो जाते थे। मध्य प्रदेश के बुरहानपुर नगर से कोई सात कोस की दूरी पर रणवीर नाम का एक स्थान था। तुलसी बाई ने इसी स्थान को अपना निशाना बनाया। अहमद खाँ नाम का एक मुगल सरदार वहाँ सूबेदार था तुलसी बाई ने उसके पास सन्देशा भेजा कि अपने प्रान्त की चौथ फौरन अदा करो नहीं तो मैं युद्ध करूँगी। सारा शहर आग की लपटों से छा जायगा। और तुम अपने किये को पहुँचोगे। तुलसी बाई का सन्देशा सुन कर अहमद खाँ को हँसी आ गई। उसने दूत को हँस कर जवाब दिया—"जान पड़ता है कि आजकल महाराष्ट्र में

वीर पुरुषों का अभाव हो गया है। तभी तो औरतें इस प्रकार सिर उठा रही हैं। अपनी बाई से जाकर बालो कि हम उनका आदर करने के लिये तैयार हैं। शौक से चली आएँ अन्यथा हमारे कमर में भी चोखी तलवार है।" मुग़लों ने इसी तलवार से भारत को परास्त किया है। हम भी इसी तलवार से उनका स्वागत करेंगे। तुलसी बाई भी युद्ध करने के लिये कील काँटे से तैयार बैठी ही थीं। अहमद ख़ाँ का उत्तर पाते ही उन्होंने कूच का डंका बजा दिया। वह एक अच्छे घोड़े पर भाला लेकर सवार हो सब से आगे चलीं। मावले वीर भी उनके पीछे चलने लगे। अहमद ख़ाँ ने जो यह हाल सुना, तो उसने भी सेना इकट्ठी की। और युद्ध का डंका बजा दिया। इस समय तुलसी बाई ने बड़े ही कौशल से काम लिया। उन्होंने अपनी सेना के तीन भाग किये। एक भाग को तो पड़ाव पर रसद आदि की रक्षा करने और समय पर सहायता पहुँचाने के लिये रखा और दूसरे को सूबेदार के प्रान्त में लूट मार के लिये भेज दिया, और तीसरा भाग युद्ध के लिये रखा। परन्तु मुगल सेना में यह दूरन्देशी न थी। वहाँ प्रबन्ध के नाम पूरा गड़बड़ घोटाला था। हाँ विलास की सब सामग्री मौजूद थी मुग़ल निस्सन्देह वीर थे और एक दिन उन्होंने निस्सन्देह तलवार के जोर से भारत पर विजय प्राप्त की थी। परन्तु अब उनके बाजुओं में वह शक्ति न थी। वीरता का

स्थान विलासिता ने ले लिया था। अन्त में यही विलासिता उन्हें ले डूबी। और उनका राज्य सदैव के लिये उनके हाथों से चला गया।

दोनों दलों का मुकाबिला हुआ। मरहठों को देखते ही मुग़ल सेना 'या अली' की गगन भेदी ध्वनि कर उन पर टूट पड़ी। मावले भी 'हर हर महादेव' के शब्द से आकाश को गुंजाते हुए मुसलमानों पर पिल पड़े। घमासान युद्ध शुरू हो गया—बन्दूकें दगने लगीं, तलवारें चमकने लगीं। सपासप भाले चलने लगे। इधर तुलसी बाई भी अपना युद्ध कौशल दिखाने लगी। और उधर अहमद खाँ भी अपनी वीरता का परिचय देने लगा। तुलसी बाई कभी तो तलवार और कभी भाले के हाथ फेरती थी। उनके सामने पड़कर कितने ही शत्रु सैनिक परमधाम को सिधारे। वह दौड़कर सेना का संचालन करती थी। जहाँ जिस वस्तु की कमी पातीं, झपट कर उसकी पूर्ति करती थीं। उत्तेजक शब्दों में अपने सैनिकों का हौसला बढ़ाती थीं। दिन भर घोर युद्ध होता रहा, जमीन खून से रंग गई, मैदान लाशों से पट गया, पर किसी दल ने हार न मानी। धीरे-धीरे शाम हो गई। दोनों दल आराम करने के लिये अपने-अपने डेरों को लौट आये।

पौ फटते ही फिर युद्ध शुरू हो गया। कल से आज दोनों ओर नई-नई तैयारियाँ की गई थीं। इसलिये युद्ध

भी विशेष उत्साह से होने लगा—योद्धा लोग जी होमकर लड़ने लगे आज अहमद खाँ के फौजदार जफर खाँ ने अपनी वीरता का अच्छा परिचय दिया। उनके भीषण हमलों से मावलों की कितनी ही पंक्तियों की सफाया हो गया। यह देख तुलसी बाई को भी अधिक जोश आ गया। उनकी अस्त्र शस्त्र चलाने की तेजी तथा सफाई देखकर दोनों दल दंग रह गये। इन दोनों की वीरता का परिणाम यह हो रहा था कि कभी मावले पीछे हट जाते थे तो कभी मुगल। इसी प्रकार सन्ध्या तक युद्ध चलता रहा। पर हार जीत का कुछ निश्चय न हुआ। निदान सूर्य डूबते ही लड़ाई बंद होगई।

जब सैनिक डेरों में लौटे तब आज उनमें विशेष जोश था। फलतः उन्होंने आराम न करने की कसम खा ली। इधर अहमद खाँ, इधर तुलसी बाई घूम-घूम कर घायलों की सेवा और मरहम पट्टी का बन्दोबस्त कर रही थीं। दोनों ओर के सैनिक अपनी धुन में अलग मस्त थे। वे कल के युद्ध के लिये नये-नये मन्सूबे बाँध रहे थे। कोई बन्दूक साफ़ कर रहा था तो कोई भाले तेज कर रहा था और कोई तलवार की धार ही परख रहा था। इस प्रकार की तैयारियों में ही बात की बात में रात बीत गई।

सबेरा हुआ। पुनः युद्ध का डंका बजा। दोनों ओर के वीर अपने-अपने इष्ट देवों को स्मरण कर जूझने लगे। मैदान में पहुँचते ही अहमद खाँ ने अपने सैनिकों से कहा—

बहादुरो ! तुम्हारे हाथ में हिन्द के फतेह करने की तलवार है। तुम्हारी इसी तलवार ने न जाने कितने हिन्दू वीरों के खून से अपनी प्यास बुझाई है। इससे न जाने कितने हिन्दू राजाओं को धूल चटाई है। आज एक बार फिर उसी जोश से इसे चलने दो। पल भर की देर है फिर मामला अपने हाथ है।

यह सुन तुलसी बाई ने कड़क कर अपनी सेना से कहा—वीरो ! तुम्हारे हाथ में साक्षात् भवानी की शक्ति है, यदि तुम विजय चाहो तो तुम्हें परास्त करने वाला है ही कौन ? देखना मरहठों की बात नीची न होने पावे। तुम्हारे इन वीर हाथों ने कितनी ही बार मुग़लों को पीछे हटाया है। आज भी शत्रुओं को इनका बल दिखला दो ?

घन घोर युद्ध ठन गया। योद्धा इस प्रकार हाथ चला रहे थे मानो मृत्यु के साथ आनन्द पूर्वक क्रीड़ा कर रहे हों। किसी को भी मरने जीने की चिन्ता नहीं थी। यदि थी भी तो केवल शत्रु को मार भगाने की। कभी इस ओर का पलड़ा भारी हो जाता था तो कभी उस ओर का। इस प्रकार युद्ध होते-होते दो पहर हो गई। मुग़ल आज पागल हो रहे थे। बार-बार 'या अली' की ध्वनि के साथ वे मावलों पर भयंकर हमले करते थे अन्त में मावलों के पैर उखड़ने लगे। तब तुलसी बाई ने पड़ाव पर ठहरी हुई सेना को इशारा किया। उसने तीन ओर से मुग़ल सेना

पर धावा बोल दिया। इस नई सेना को देखते ही मुगलों ने समझा कि अभी मावलों की बहुत सेना छिपी हुई है। अतः उनके बढ़ते हुये जोश पर पानी पड़ गया। थोड़ी ही देर में उनके पाँव उखड़ गये और वे भाग निकले। परन्तु जफर खाँ ने अन्त तक मैदान नहीं छोड़ा अहमद खाँ ने भी उसका साथ दिया। उसे इतने घाव लगे थे कि लोहू लुहान हो गया। शीघ्र ही घोड़े पर सवार हो लिया, और झपाटे से बुरहानपुर की तरफ भागा। वह खून में नहा रहा था तो भी आगे बढ़ा जा रहा था। बुरहानपुर पहुँचते-पहुँचते उसके शरीर से इतना खून निकल गया कि वह बेहोश हो गिर गया और उसी दशा में उसकी मृत्यु हो गई। उधर तुलसी बाई की सेना का दूसरा भाग पहिले से ही बुरहानपुर में लूट मार मचा रहा था।

मुगल सेना के भागते ही उसकी रसद और उसके मूल्य-वान डेरों पर तुलसी बाई का अधिकार हो गया। इस प्रकार मैदान तुलसी बाई के हाथ रहा। यह भारी विजय उन्हें अपूर्व साहस-युद्ध कौशल और दूरन्देशी के कारण प्राप्त हो सकी थी। महाराष्ट्र के इतिहास में इस विजय के कारण तुलसी बाई का उल्लेख सम्मान पूर्वक होता रहेगा। तुलसी बाई की बीरता ने महाराष्ट्र-महिलाओं की जो सम्मान वृद्धि की है वह निःसन्देह अकनीय है।

वीर बाला कोडमदे।

वीर बाला कोडमदे

बहुत दिनों की बात है राजपूताने में पूँगल नाम का एक छोटा सा राज था। ऊडिर वहाँ की राजधानी थी। वहाँ माणिकराज नामक एक वीर क्षत्रिय राज्य करते थे। कोडमदे उसी की प्यारी बेटी थी। वह जैसी रूपवती थी वैसी ही गुणवती थी। जब उसने यौवनावस्था में प्रवेश किया, तो सारे राजपूताने में उसके रूप-गुण की चर्चा होने लगी। कोडमदे को ईश्वर

ने बचपन ही से वीर हृदय दिया था। उसे वीरों की कहानियाँ बहुत पसन्द आती थीं। वह बड़े ही चाव से वीर कहानियाँ सुनती और मन ही मन न जाने क्या-क्या सोचा करती थी।

जब कोडमदे की आयु विवाह योग्य हुई, बड़े-बड़े क्षत्रिय उसकी प्राप्ति के लिये चेष्टा करने लगे। माणिकराज के पास अनेक स्थानों से सन्देशे आने लगे। उस समय राठौर नरेश बड़े प्रतापी हो रहे थे उनका राज्य भी विस्तृत था। मण्डौर उनकी राजधानी थी। नरकेशरी चूड़ा वहाँ का अधिपति था वह बड़ा ही प्रतापी और शूरवीर था। उसका नाम सुनते ही बड़े-बड़े वीरों की छातियाँ धड़क उठती थीं। उसके कितने ही पुत्र थे, जिसमें अड्कमल सब से प्रसिद्ध था। वह भी पिता के समान ही वीर, योद्धा और साहसी था। माणिकराज ने इसी अड्कमल को पसन्द किया और विवाह की बातचीत पक्की हो गई।

उन्हीं दिनों जैसलमेर के राजकुमार सोढूल का नाम भी वीरता के कारण प्रसिद्ध हो रहा था। उसने कितने ही युद्धों में अतुल पराक्रम दिखलाकर विजय प्राप्त की थी। कोडमदे इस वीर राजकुमार के पराक्रम की कहानियाँ सुन चुकी थी। अभी उसके विवाह को कुछ दिन बाकी थे कि किसी काम से सोढूल ऊडिर में आया। माणिकराज ने उसे बड़े आदर से अपने यहाँ ठहराया। कोडमदे पहिले ही सोढूल की

वीरता का वर्णन सुन चुकी थी, आज तो साक्षात दर्शन ही हो गये। सोदूल की वह सुन्दर, भव्य और वीरमूर्ति, कोडमदे के हृदय में समा गई। सोदूल के आगमन ने जिस विष वृक्ष का जन्म दिया उसे राजा, रानी समझ ही न सके।

जब विवाह के थोड़े दिन रह गये, तब कोडमदे ने अपने माता पिता को अपने निश्चय की सूचना दी बेचारे माणिक राज बड़े पशोपेश में पड़ गये उन्होंने विचारा कि यदि पुत्री की बात पर चलता हूँ तो एक प्रबल नरकेशरी का कोप भाजन बनाना पड़ेगा। उसकी एक ही गर्जना से मेरा यह छोटा सा राज्य उथल पुथल हो जायगा। उसे.वचन भी दे चुका हूँ, अब कैसे मुकर जाऊँ! माणिक राज ने बेटी को बहुत कुछ समझाया कितने ही सब्ज़ बाग़ दिखाये, कितना ही ऊँच नीच सुझाया। डराया-धमकाया, पर वह अपने प्रण से तिल भर न डिगी। उसने साफ़-साफ़ कह दिया। मैं सोदूल को अपना हृदय दे चुकी। अब उस पर दूसरे का अधिकार हो नहीं सकता। नारी धर्म शास्त्र से मैंने यही बात सीखी है।

भावी विपत्ति के भय से माणिकराज का माथा ठनकने लगा। उसने इस गुत्थी को सुलझाने के लिये जितनी ही अधिक चेष्टायें कीं, उतनी ही वह अधिक उलझती गईं। अन्त में विवश होकर उसने सोदूल के पिता राणांगदेव से प्रस्ताव किया। राणांगदेव से माणिकराज और चूड़ा की

बात चीत छिपी हुई न थी। वह समझ गया, कि इस सुन्दर रूप में घोर आपत्ति मुझे ग्रसने आ रही है। पर वीर क्षत्रिय आपत्तियों की परवाह नहीं करते। माणिकराज के प्रस्ताव को अस्वीकृत करना नीति विरुद्ध था। इससे उसका घोर अपमान होता था अतः राणांगदेव ने माणिकराज का प्रस्ताव स्वीकृत करने से उस वीर शिरोमणि चूड़ा से जिसके चरणों में बड़े-बड़े वीर शीश झुकाते हैं, बैठे ठाले बैर विसाना होगा। तौ भी चिन्ता नहीं हम भी तो क्षत्रिय हैं। आप प्रसन्नता पूर्व्वक विधिवत नारियल भेजिये।"

सोढ़ूल पिता की आज्ञा से चुने हुये वीरों का दल लेकर कोडमदे को ब्याहने चला। माणिकराज ने खिन्न मन से बारात की अगवानी की। शुभलग्न में सोढ़ूल और कोडमदे के फेरे पड़ गये। उनका जीवन-सूत्र एक हो गया। जब सोढ़ूल कोडमदे को बिदा करा कर चलने लगा तो माणिक-राज ने उससे कहा—"यह समाचार सुनकर चूड़ा और अडकमल शान्त न रहेंगे, वे अवश्य ही राह में झगड़ा करेंगे" अतः मेरी कुछ सेना साथ लेते जाइये। सोढ़ूल ने जवाब दिया उँह! देखा जायगा! मेरे साथी भी वीर हैं। उन्होंने भी वीर माताओं का दूध पिया है। आप क्यों कष्ट करते हैं। तौ भी माणिकराज का मन न माना, उसने अच्छे अच्छे पांच सौ वीरों की सेना सोढ़ूल के साथ कर ही दी।

माणिकराज ने जो सोचा था वही हुआ। अग्नि के

संयोग से जिस प्रकार बारूद का ढेर भड़क उठता है उसी प्रकार इस समाचार से चूड़ा और अडकमल की क्रोधाग्नि भड़क उठी। चूड़ा ने अडकमल से कहा—बेटा, अभी जाओ, और जैसे बने सोदूल को मार कर कोडमदे को छीन लाओ। वह हमारे महल में दासी बन कर रहेगी। और ऊडिर की ईंट से ईंट बजा दो। बेईमान माणिकराज का यह साहस, कि वह हमारा ऐसा घोर अपमान करे। परवाह नहीं भले ही रक्त की नदियाँ बह जायँ। पिता की आज्ञा पाते ही क्रोधित अडकमल के वीरों की विपुल वाहनी सागर की तरंगों के समान चल पड़ी, मानों ऊडिर, माणिकराज और सोदूल को अपने में लीन करके ही दम लेंगी। अडकमल ने सोदूल का रास्ता रोक लिया। सोदूल ने उसके पास दूत द्वारा खबर भेजी कि इस छेड़ छाड़ का क्या मतलब! इस खून खराबी से कोई लाभ नहीं हमारा रास्ता छोड़ दीजिये। अडकमल ने जबाव दिया। कैसी खून ख़राबी? मैं तो सोदूल के रक्त से युद्ध देवता का तर्पण करने आया हूँ! जब तक अपने मन की न कर लूंगा तब तक एक इञ्च भी पीछे न हटूँगा। अब क्या दोनों ओर से युद्ध की तैयारियाँ होने लगीं। धड़ाधड़ मारू बाजे बजने लगे। सोदूल ने फिर अडकमल के पास खबर भेजी कि इन बातों में क्या रक्खा है। मैं भी कुछ कम नहीं हूँ, पर व्यर्थ ही निरपराधियों का खून बहाने से क्या लाभ? दोनों ओर से

एक-एक योद्धा मैदान में आये और लड़े। जिस ओर का योद्धा विजयी हो उसी की विजय मानी जाय।

अडर्कमल ने यह बात मान ली। दोनों ओर के दो वीर मैदान में छोड़ दिये गये। वे बड़ी देर तक आपस में दाँव पेंच करते रहे। अन्त में सोदूल के वीर ने अडर्कमल के वीर को दे मारा वह योद्धा विजय गर्व से मानो उन्मत्त हो गया और तलवार लेकर अडर्कमल के दल पर पिल पड़ा फिर क्या थी, बनी बनाई बात बिगड़ गई, घमासान युद्ध शुरू हो गया 'मार मार' की ध्वनि से आकाश गूज उठा— यह स्थिति देख सोदूल भी कमर कस कर तैयार हो गया। और प्रियतमा कोडमदे से विदा लेने पहुँचा। कोडमदे अभी नई दुलहिन थी। अभी उसके हाथ के मेंहदी की लाली ज्यों की त्यों ही थी। उसने पति को नज़र भर देखा न था। दाम्पत्य-सुख कैसा होता है इसकी उसे कल्पना भी न हो सकी थी। तो भी उसके हृदय में पति प्रेम की अटूट मंदाकिनी बह रही थी। उसने पति को उत्तर दिया, जिसको याद कर आज भी भारतरमणी का मस्तक ऊँचा हो सकता है। उसके हृदय में कर्त्तव्य की बिजली चौंक सकती है। कोडमदे ने पति को जवाब दिया—नाथ! क्षत्रिय युद्ध भूमि को जाते समय सोच विचार नहीं करते। न वे युद्ध के अवसर से मुँह मोड़ते हैं। आप जैसे वीर पति को पाकर मैं गौरवमयी हो रही हूँ। आप आनन्द से रणभूमि को प्रस्थान कीजिये। यदि विजय होगी तो

हम इसी लोक में सुख भोगेंगे। और यदि आप युद्ध में प्राण देंगे तो हम दोनों अग्नि शैया पर बैठ कर स्वर्ग की राह लेंगे। वही हमारा नया जीवन स्वर्गीय सुख भोगेगा। सोढूल ने कोडमदे को छाती से लगा लिया यही इस वीर दम्पति का पहिला और अन्तिम सम्मिलन था। यही मिलन इस वीर दम्पति की पहिली और अन्तिम सुहागरात थी। यही इस वीर दम्पति की प्रथम और अन्तिम प्रेमवार्ता थी।

ज्यों ही सोढूल, रणभूमि में पहुँचा कि युद्ध का रंग चौगुना हो गया। वह मार काट मचाता हुआ अडर्कमल के सामने जा पहुँचा। और कहा—भाई! रक्त का यह फाग क्यों खेल रहे हो? आओ हमीं तुम निपट लें। अभी फैसला हुआ जाता है। दोनों दल शान्त हो गये। अडर्कमल भी कुछ कम वीर न था सोढूल की चुनौती सुनते ही वह उससे आ भिड़ा। दोनों दल तमाशा देखने लगे। लड़ते लड़ते अन्त में अडर्कमल मारा गया। पर सोढूल भी अधिक आहत हो चुका था अडर्कमल को गिरते देखकर वह भी घोड़े से गिर पड़ा, और तुरन्त बेहोश हो गया।

यह खबर सुनते ही कोडमदे तुरन्त वहाँ आ पहुँची। उसके मन में लेशमात्र रंज और उदासी न थी। मुखड़े से दृढ़ता टपकी पड़ती थी। उसने पति का सिर अपनी गोद में रख लिया और उसे होश में लाने का उपाय करने लगी। बड़ी चेष्टा के बाद सोढूल ने आँखें खोली। अपने को प्रिय-

तमा की गोद में देख, उसके मुँह से मुस्कुराहट खिल पड़ी। उसने कोडमदे से कहा—प्रिये क्षमा करना! मेरे ही कारण आज तुम्हारी यह दशा हो रही है। मैं तुम्हें एक दिन भी सुख न दे सका यह कहते हुए वीरवर सोदूल की आँखें बन्द हो गई। एक हिचकी आई और प्राणवायु अनन्त में लीन हो गई।

मेरे जीवन धन! मैं तुम्हें अकेले ही स्वर्ग यात्रा न करने दूँगी मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगी। यह कहते हुये कोडमदे की आँखों से आँसुओं की दो बूँदें सांदूल के मुखड़े पर गिर पड़ी। उसी युद्ध भूमि में चिता सजाई गई। हाय! यही दम्पति की सुहाग शय्या थी। कोडमदे चिता पर जा बैठी पति का शव प्रेम से गोद में रख लिया। फिर उसी वीर बाला ने खड्ग उठाया। और अपनी एक भुजा काट कर पिता के सैनिकों के सामने फेंक दी और कहा—मेरी यह भुजा पिता जी को दे देना और कहना कि यह तुम्हारी दीन पुत्री की भेंट है। आज वह सारे संसार से नाता तोड़ मुँह मोड़ सती लोक को जा रही है। इसके बाद एक सखी ने देवी की आज्ञा से उसकी दूसरी भुजा भी काट दी। यह भुजा कोडमदे ने अपने सैनिकों को दी और कहा—यह भेंट मेरे श्वशुर जी को दे देना। और कहना कि तुम्हारी बहू तुम्हारे बेटे के साथ सती लोक को चली गई। इसके बाद बस चिता की आग भड़क उठी। दो लहराते हुए पौधे उसमें राख का ढेर बन गये।

वीरांगना कमला

वीराङ्गना कमला

बुलन्द शहर ज़िले में मोहनपुर नामक एक ग्राम है। मुसलमानी ज़माने में वहाँ का ज़मींदार रामनाथ नाम का एक क्षत्रिय था। कमला उसी की धर्म-पत्नी थी। वह बड़ी ही रूपवती गुणवती और पतिव्रता थी। उसने अपने गुणों से सारे ग्राम को मोह लिया था। सभी उसके एक मुँह से गुण गाते थे।

उन्हीं दिनों में मेरठ में एक मुसलमान सूबेदार रहा करता

था। जो नवाब कहलाता था। उसने भी कमला के रूप गुण की बड़ाई सुनी, तो उसकी तबीयत बहुत खुश हो गई। अब तक छल बल से वह कितनी हीं कुल कमलिनियों को वश में ला चुका था। इस बार उसने कमला को वश करने की ठानी। कुछ सोच कर उसने दल बल समेत मोहनपुर की यात्रा की।

मोहनपुर में पहुँच कर नवाब ने धूमधाम से दरबार किया आस पास से सब ज़मींदार नजराना लेकर हाजिर हुये। रामनाथ भी अपनी हैसियत के अनुसार नज़राना लेकर दरबार में पहुँचा और लोगों की अपेक्षा उसका आदर भी कुछ अधिक किया। इस पर नवाब की ऐसी कृपा देख सब को बड़ा अचरज हुआ।

शाम होते-होते दरबार समाप्त हो गया। सब लोग अपना-अपना नजराना नवाब को भेंट करके घरों को लौटने लगे। जब रामनाथ ने नवाब से विदा माँगी, तो नवाब ने उससे कहा—आप जरा ठहरिये! आप की मुलाकात से तो मेरा जी नहीं भरा। रामनाथ प्रसन्नता से गद्गद हो उठा। ऐसा राज सम्मान किसे मिलता है। वह खुशी से बैठ गया। दो एक बार उसने नवाब से फिर आज्ञा माँगी पर उसे वही जवाब मिलता। धीरे-धीरे गप शप होते-होते रात हो गई। अब नवाब मतलब पर आया। उसने बातों ही बातों में अपनी इच्छा प्रकट की।

अब रामनाथ की समझ में इस सम्मान का मतलब आया। नवाब की इच्छा सुनते ही उसके पैरों तले की जमीन खसक गई। वह नवाब से अनुनय विनय करने लगा। तब उसने रामनाथ को झिड़क कर कहा! सुनिये ज़मीदार— मैं कमला को अपनी बेगम बनाने का इरादा कर चुका हूँ इसी से इतनी परेशानी उठा कर यहाँ आया हूँ। अगर आप राजी खुशी कमला को मेरे हवाले कर देंगे, तो मैं आप को मालामाल कर दूँगा। आपकी जमींदारी अब से चौगुनी कर दी जायगी। हर्ज क्या है? आपको औरतों की कमी क्या है। अगर आप मेरी बात न मानेंगे तो सोच लीजिये कि नतीजा बहुत बुरा होगा।

आगा पीछा सोचकर रामनाथ चुप हो गया। यह देख कर नवाब ने समझा कि हाँ! अब चिड़िया फंस गई। उसने कमला को लाने के लिए फौरन रामनाथ के साथ दस जवान कर दिये। वे नंगी तलवारें खींच, उसे घेर कर चलने लगे।

यहां कमला देवी पति के लिये बेचैन हो रही थी। दर-बार कब खतम हो गया। पास-पड़ोस के सब लोग लौट आये, परन्तु वे! अब तक नहीं आये। उन पर कोई आफत तो नहीं आई। वह कभी भीतर जाती थी और कभी बाहर दरवाजे पर खड़ी हो घण्टों रास्ते की ओर ताकती थी अब आते हैं! अब आते हैं!! इसी बेकली में उसने जागते-

जागते सारी रात बिता दी। कई नौकर भी उसने रामनाथ का पता लगाने के लिये भेजे, पर वे भी छूँछे लौट आये।

पौ फट रही थी। कमला खिड़की से रास्ते की ओर झाँक रही थी। इतने में उसने पति को आते देखा उसका माथा ठनका। इतने में रामनाथ हवेली के दरवाजे पर आ पहुँचा। सिपाहियों ने उसे डाँट कर कहा—जा, जल्दी से अपनी औरत ला दे!

रामनाथ भीतर आया कमला ने उसे बड़े आदर और प्रेम से बिठाया। फिर कहा—प्रियतम! इतनी देर कहाँ लगाई! आपके साथ ये सिपाही क्यों आये हैं। क्या ये सिपाही नवाब साहब ने आपके सम्मानार्थ भेजे हैं? और हाँ, यह तो बताइये, आप इतने घबराये हुये क्यों हैं। आप का चेहरा उतरा हुआ क्यों है?

रामनाथ की आंखों में आँसू छलछला आये। उसने कमला को जवाब दिया। प्रिये! क्या कहूँ, बड़ी आफत है अब तुम मेरी प्रिया न रहोगी। नवाब तुम्हें अपनी बेगम बनाना चाहता है। इसलिये उसने मुझे अभी तक रोक रक्खा था, ये सिपाही तुम्हें लेने के लिये आये हैं। सो अब तुम इनके साथ जाओ। यदि राजी खुशी से न जाओगी तो नवाब तुम्हें जबरदस्ती छीन लेगा। और मुझे भी जान से हाथ धोना पड़ा।

क्रोध से कमला मुँह तमतमा उठा। उसने बिगड़कर

रामनाथ से कहा—तुम पर भी सौ बार धिक्कार है। तुम क्षत्रिय होकर मुख से ऐसे वचन कहते हो। तुम पर नवाब का इतना रोब छा गया कि तुम ऐसे भीरु बनकर यहाँ चले आये। तुम कैसे मर्द हो! भला कोई भी मर्द अपनी स्त्री को इस तरह दूसरे को सौंपने के लिये राजी हो सकता है? जान पड़ता है उसने तुम्हें खूब लालच दिया है?

कमला ने उसे बहुत समझाया और धीरज बँधाया। देर होते देख सिपाहियों के सरदार ने गरज कर कहा—क्यों बे? घर में छिपा-छिपा क्या कर रहा है? औरत को लेकर बाहर आता है या नहीं। क्या? मैं ही भीतर आऊँ? कमला ने उसे जवाब दिया—थोड़ा ठहरो, मैं कपड़े बदल कर तुम्हारे साथ चलती हूँ!

कमला ने फौरन कपड़े बदले। चोली में बिछुआ और कटार को भी स्थान दिया। कमर में एक अच्छी सी तलवार बाँधली। इस प्रकार वह चलने के लिये तैयार हो गई। अब उसने रामनाथ के भी कपड़े बदलवाये, और उसे हथियारों से सजा दिया। फिर उसने पति से कहा देखो, हिम्मत न हारना। होशियारी से रहना और मैं जैसा कहूँ या इशारा करूँ, ठीक वैसा ही करना।

इसके बाद वह नवाब के डेरे की ओर चली। थोड़ी ही देर में यह लोग डेरे के सामने पहुँच गये। दरबान ने नवाब को खबर दी, जमींदार अपनी औरत को लेकर आ गया है।

पर वे दोनों मर्द औरत हथियार बाँधे हुये हैं। नवाब ने बिगड़ कर उससे कहा—अबे! वे हथियार बाँधे हुये हैं तो इसमें तेरे बाप का क्या हर्ज है? जा उन्हें जल्दी से इज्जत के साथ ले आ!

सब लोग वहाँ से हटा दिये गये। कमला और रामनाथ को देख नवाब के हृदय की कली खिल गई। वह क्षण भर के लिये अपने को भूल गया। चट अपने गले से मोतियों की मूल्यवान माला निकाली और कमला की ओर बढ़ा कर कहा—"ऐ माहताब! कब से यह दिल तुम्हारे लिये तड़प रहा है! आज तुम्हें देख कर आंखें ठण्ढी हुई। आओ-आओ देर मत करो, और दिल की आग बुझाओ, यह मोतियों की माला लो और मेरे मन को प्रसन्न करो। मैं तुम्हें अपनी खास बेगम बनाऊँगा, और तुम्हारा ताबेदार होकर रहूँगा!"

यह सुनते ही कमला ने रामनाथ की ओर इशारा किया। रामनाथ नवाब की ओर बढ़ा, नवाब ने उसे अपने पास बिठाने के लिये हाथ बढ़ाया। इतने ही में बिजली चमकी। नवाब चारों खाने चित्त जमीन पर गिर पड़ा। बिजली की भाँति कमला उसकी छाती पर सवार हो गई कमला ने अपनी कटार नवाब के गरदन पर रख दी और कहा बस! जरा भी आवाज निकाली नहीं, कि यह कटार तेरे गले के पार हुई।

रे पापी ! तू दूसरे की पत्नी से हँस २ कर बातें करता है ! ले अब देख ! तेरा कलेजा किस प्रकार ठंढा करती हूँ ! अभी तक तो मेरा दिल तड़पता था। अब तेरा सारा शरीर तड़पेगा, इन आँखों ने मुझे बुरी तरह देखा है। इनमें कटार चुभाऊँगी। इस जबान से तू ने मुझे प्यारी कहकर पुकारा है, सो इसे काटकर कुत्तों को खिलाऊँगी। तू इस सीने से चिपटाना चाहता था, अब इसे चाक करूँगी। और जिगर के टुकड़े-टुकड़े उड़ाऊँगी। इस तरह तुझे पर नारी के सतीत्व को नष्ट करने का मज़ा चखाऊँगी। ले सँभल जा ! अब कटार पार होती है। जो कुछ कहना हो सब कह सुन ले। अब भी तेरी जान तेरे हाथ में है। कमला का यह भयंकर रूप देखते ही नवाब के देवता कूच कर गये। उसकी सिट्टी गुम हो गई। उसने गिड़गिड़ा कर कमला से कहा—हा ! माँ ! बड़ी मेहरबानी होगी मेरी जान बख्श दो, बोलो मुझे क्या करना पड़ेगा ?

कमला—कुछ नहीं ! केवल पर नारी को माता के समान देखना होगा। और इसके लिये जमानत देनी पड़ेगी।

नवाब—ऐ मां ! तुम जो कहती हो, वही करूँगा। आज से किसी पतिव्रता पर नज़र न उठाऊँगा—चाहे वह हिन्दू हो या मुसलमान ! इसके लिये क्या जमानत दूँ, खुदा हमारे बीच में है। भरोसा हो तो अब मुझे छोड़ दो। मैं तुम से माफ़ी माँगता हूँ, बदमाशों के कहने में आकर नाहक ही

मैंने यह ज़िल्लत मोल ली ! अब जो कहो वही करने को तैयार हूँ। मुझे छोड़ दो। क़सम खुदा की—जिन्दगी भर एहसान न भूलूँगा जब तक जिऊँगा, तुम्हें माँ के बराबर मानता रहूँगा।

यह सुनते ही कमला नवाब की छाती पर से उतर पड़ी ! अब भी नवाब का डर दूर नहीं हुआ था। उसने फिर हाथ जोड़ कर कमला से कहा—माँ, तू जो कहेगी वह तो मैं करूँगा ही परन्तु जब तूने इतनी मेहरबानी की है तो इतना और करना कि, यह हाल किसी से न कहना, नहीं तो मैं बदनाम हो जाऊँगा। बादशाह मुझ से नाराज है—चुगल मेरे पीछे लगे हैं। अगर बादशाह के कानों तक यह खबर पहुँच गई तो मेरी नवाबी जाती रहेगी।

कमला ने उसके सिर पर हाथ फेर कर उसे अभय किया इसके बाद नवाब ने बहुत सी अशर्फियाँ, आभूषण और कपड़े मँगवा कर कमला के सामने रक्खे। कमला ने इन्हें वहीं लुटा दिया और आनन्द के साथ पति को साथ ले घर लौट आई।

कुछ दिन बाद कमला को नवाब का एक फर्मान मिला जिससे मालूम हुआ कि नवाब ने उसे पाँच गाँव जागीर में दिये हैं।

महारानी कलावती

कर्णसिंह राजपूताना के किसी प्रान्त के राजा थे। कलावती उसकी रानी थी। जिस समय अलाउद्दीन ख़िलजी जैसलमेर का विनाश करके चित्तौड़ की ओर दूसरी बार युद्ध करने के लिये आ रहा था, तो मार्ग में कर्णसिंह के प्रान्त से होकर वह जा रहा था। अलाउद्दीन आप ही प्रचण्डाग्नि स्वरूप था। जिधर मुख करता उधर ही देश को विदग्ध करता

जाता था। जिधर से उसकी सेना जाती थी, समस्त ग्राम जलाते जाते थे। खेत उजाड़ दिये जाते थे। और सहस्रों जीवों के सिर गाजर मूली की भाँति काटते जाते थे। दो तीन मुगलिये बादशाहों के सिवाय समस्त मुसलमान बादशाह अन्धेर मचा गये हैं, जिनका चिन्तन करने से रोंगटे खड़े हो जाते हैं। परन्तु वे जो काम कर गये धर्म की आड़ में कर गये हैं। अलाउद्दीन को धर्म से इतना प्रेम नहीं था। वह चाहता था कि किसी और धर्म को अपने नाम से प्रचलित करें। इसने भी ऐसे उपद्रव किये हैं कि इतिहास पढ़ने वाले सदा इसके नाम को घृणा की दृष्टि से याद करते रहेंगे। यह बड़ा धीर बादशाह हुआ है इसने अपनी लूट मार मध्यप्रदेश व राजपूताना ही तक सीमित नहीं रक्खी थी। वरंच इसकी सेना चारों ओर युद्ध वा खून करती हुई टिड्डीदल की भाँति सेतबन्ध रामेश्वर तक चली गई थी। और वहाँ भी अन्याय के स्मरणार्थ सैकड़ों मन्दिर तोड़कर एक मस्जिद बनाई थी। जिस समय अलाउद्दीन लूट मार करता हुआ कर्णसिंह के राज्य से निकला तो राजपूत राजा इसका सामना करने के लिये सम्मुख आया। बड़ी भारी लड़ाई हुई। राजा दुर्बल था। सेना भी थोड़ी ही थी तथापि वीरता उसकी घूंटी में पड़ी थी। परन्तु राजपूत एकता के गुणों से अनभिज्ञ हुये चले जाते थे। इसलिये इतनी सेना भी इकट्ठी नहीं कर सकते थे जो समय पर शत्रुओं का

सामना करती। तो भी कर्णसिंह ने अपनी वीरता और धैर्य्य से शत्रु के छक्के छुड़ा दिये। अलाउद्दीन थोड़े से राजपूतों से, एक चढ़ाई की राह में पराजित होकर बड़ा विस्मित हुआ। उसने निशाना तानकर कर्णसिंह पर बाण मारा जिसके लगते ही कर्णसिंह पृथ्वी पर आ गिरा। आजकल की तरह सेना का जय पराजय केवल सरदार के ऊपर ही निर्भर होता था। कर्णसिंह के खाली घोड़े को देखकर कोलाहल मच गया, प्यादे, सवार, सब निरुत्साहित हो गये बेचारे कर्णसिंह को तो सुध ही न थी। मुसलमानों को तो यही फिक्र थी कि किसी तरह जख्मी राजा पकड़ा जाय। इसलिये वह निर्भयता से आगे बढ़ते जाते थे, परन्तु शुभ काम यह था कि उसकी रानी कलावती उसके साथ रणभूमि में आई हुई थी। इसने अपने पति को उसी समय डोली में सवार किया। और आप उनके स्थान पर आकर सिपाहियों को उत्साहित करने लगी। वह आप शस्त्र धारण किये हुए थी और धनुष भी चलाती थी। कौन भीरु पुरुष था जो ऐसी वीर स्त्री के साथ रहकर पीठ दिखलाता। घोर संग्राम होने लगा। क्षण मात्र में दोनों ओर के सहस्रों वीर पुरुष पृथ्वी पर लेट गये।

कई मुसलमान डोली की तरफ झुके। रानी ने तलवार लेकर उन सबको मार गिराया और इसी प्रकार सायंकाल तक लड़ती रही। सन्ध्या समय जब लड़ाई बन्द हो चुकी।

तो अलाउद्दीन की फौज ने तो ठहरने के बजाय राजपूतों के भय से आगे को प्रस्थान किया और वहाँ के राजपूतों ने अपनी राजधानी में आकर दम लिया।

कर्णसिंह के शरीर से तीर निकाला गया, जिससे उन्हें महान क्लेश हुआ। वैद्यों को उपचार के लिए बुलाया गया। उन सब ने मिलकर कहा—तीर विष से भरा हुआ है अब कोई उपाय नहीं हो सकता। हाँ यदि किसी तरह कोई पुरुष राजा के विष को चूस ले तो वह बच जावें। परन्तु विष को चूसने वाला अवश्य मर जायगा। कर्णसिंह को स्वीकार न था कि कोई पुरुष इसके लिए प्राण दे।

थोड़ी रात जाने के बाद जब राजा को नींद आ गई तो कलावती ने उसको दवा सुँघाकर बेहोश कर दिया। और आप अपने मुख से उसका विष चूसने लगी।*

कर्णसिंह को खबर तक नहीं हुई और उसने थोड़ी ही देर में सारा विष चूस कर निकाल दिया। राजा जी तो अच्छे हो चले, परन्तु प्रातःकाल को दो तीन घड़ी दिन चढ़ते ही कलावती की दशा बिगड़ने लगी। जब उसने देखा कि समय समीप आ गया, तो कर्णसिंह से कहा—राजन्! मैं आपकी स्त्री और प्रजा हूँ। मेरे जैसे सहस्रों जीव आप पर न्योछावर हों। मुझे स्वीकार नहीं था कि मेरे जीते जी मेरे प्राणपति

---

* नोट—इससे सिद्ध होता है कि उस समय विष चूसने की कोई शल्य क्रिया नहीं थी।

इस संसार से कूच करें। मैंने आपका विष चूस लिया है उसी के असर से थोड़ी ही देर में इस संसार से कूच कर जाऊँगी कृपा कर अपना चरण मुझे दे दीजिये। जिससे कि मैं आपका चरण पकड़े हुये इस शरीर को त्याग दूँ।

वीर पतिव्रता रानी कलावती का अंतिम समय आ चुका था। कोई ऐसा उपाय न था जो इसको ,मृत्यु के हाथ से बचा सके इसके पातिव्रत भाव को देखकर दुर्बल कर्णसिंह ने अपना चरण आगे कर दिया उसने दोनों हाथों से पकड़ कर मस्तक में लगाया। और थोड़ी देर में प्राण त्याग दिया। कर्णसिंह तो अच्छे हो गये परन्तु अपनी प्यारी रानी के वियोग में चिन्तातुर ही रहे।

प्रमीला देवी

राम और रावण का युद्ध मशहूर है। इस युद्ध में रावण के सब लड़के मारे गये। केवल इन्द्रजीत ही बचा था। इन्द्रजीत उसका नाम इसलिये पड़ा था कि एकबार उसने देवताओं के राजा इन्द्र को भी जीत लिया था। उसके बल और विक्रम पर उसे ही नहीं सारी लंका को अभिमान था।

हमारे इस कथा की नायका सती प्रमीला इन्द्रजीत की

प्राण प्रिया पत्नी थी। इन्द्रजीत उसके रूप राशि पर मुग्ध था। प्रमीला में उसने एक ऐसा स्वर्गीय खजाना पाया था जिसके सामने सारा संसार फीका था। प्रमीला भी इन्द्र-जीत के समान विश्वविजयी पति पाकर अपने भाग्य पर इतरा रही थी। जीवन की इस सुखमय घड़ी में दोनों लंका से दूर दूर एक सुन्दर उद्यान में पक्षियों के एक सुन्दर जोड़े के समान सुखपूर्वक रहते थे। जब इन्द्रजीत शिकार खेलने जाता था तो वापस आने पर प्रमीला उसे सजाने के लिये सुन्दर २ फूलों की मालायें गूथा करती थी यही दोनों का दैनिक कार्य था।

एक दिन जब इन्द्रजीत शिकार के लिये गया था और प्रमीला उद्यान में बठी मालायें गूँथ रही थी तो उसकी एक सहेली ने आकर कहा—युवराज्ञी ? महल के फाटक पर बैठी एक बुढ़िया रो रही है। कहती है—मैं युवराज इन्द्रजीत की धाय हूँ।

प्रमीला ने कहा—"उसे शीघ्र यहाँ लाओ।"

बात की बात में वह बुढ़िया उसके पास पहुँचा दी गई। प्रमीला ने उसके आते ही पूछा—"लङ्का का क्या हाल है।"

"बुढ़िया ने जवाब दिया—"बुरा हाल है।"

"बुरा कैसा ? कोई बीमार है क्या ?"

"नहीं !"

"फिर—"

"तुम्हारे जितने देवर थे सब मारे गये ?"

प्रमीला ने आश्चर्य से उसकी ओर देखकर कहा !—कैसे !

बुढ़िया बोली—"एक बहुत बड़े दुश्मन ने जिसका नाम राम है। लङ्का को चारों ओर से घेर लिया है उसीके साथ लड़ाई में तुम्हारे सब देवर मारे गये।"

बुढ़िया बोली—"इसी लिये तो कोई दूत यह दुखद समाचार यहाँ लाने को तैयार न था। कि आप लोग उसका विश्वास न करेंगे और दूत की बातों को मजाक समझ कर उसकी दुर्दशा करके मरवा डालेंगे।

प्रमीला ने कुछ उदास होकर कहा—"तब तुम कैसे आई हो।"

बुढ़िया बोली—"मैं इन्द्रजीत की धाय हूँ छोटेसे उसे बड़ा किया है बड़े प्रेम से उसे पाला है। वह मेरी बातों का विश्वास जरूर करेगा। इसी लिये·········

प्रमीला ने एक लम्बी साँस ली—

इन्द्रजीत जब शिकार खेलकर वापस आया तो देखा कि प्रमीला के चेहरे पर वह मुस्कुराहट नहीं है। कारण जानने में उसे देर नहीं लगी। बुढ़िया उसे देखते ही बिलख बिलख कर रोने और सारा हाल कहने लगी। देखते ही देखते इन्द्रजीत का सारा शरीर गुस्से से काँप उठा, भुजायें फड़क उठीं और आँखें चढ़ गई उसने गर्जकर कहा—धाय ! आज रात भर में राम का काम तमाम कर दूँगा। कल प्रातःकाल लंका

में फिर वही अमन चैन दिखाई पड़ेगा। आह? पिता जी ने मुझे पहिले ही क्यों न खबर दी।

इसी समय प्रमीला उसे मालायें पहिनाने के लिये आई। पर इन्द्रजीत ने उसका हाथ अपने हाथ में लेकर कहा—प्राण-वल्लभ यह कुसुम कलियाँ आज काम न देंगी अब तो फौलाद की मालाओं की जरूरत आन पड़ी है जिरह बख्तर पहिनाओ, कंधे में धनुष लटकाओ, हाथ में तलवार दो, पीठ पर तरकस बाँधो, इस समय यही तुम्हारा कर्त्तव्य है।

बात की बात में प्रमीला ने इन्द्रजीत को वास्तविक इन्द्र-जीत बना दिया। तब उसने कहा—प्रिये अब विदा करो। प्रमीला ने कहा—क्या मैं यहाँ अकेली रहूँगी। मुझे भी लंका लेते चलो। कुछ न होगा तो दुखी सास का ही मन बहलाया करूँगी। मैं बिना तुम्हारे यहाँ एक दिन रह भी तो नहीं सकती?

इन्द्रजीत ने कहा—बस रात ही भर का तो वियोग है। राम का सर्वनाश कर मैं प्रातःकाल होते ही आ जाऊँगा। फिर माता की इच्छा होगी तो तुम्हें दिन में लंका ले चलूंगा।

प्रमीला ने पति का कमर बन्द छू कर कहा—इस समय लंका चलने का हठ नहीं करूँगी पर नाथ!......(प्रमीला के आँखों में आँसू आ गये)

इन्द्रजीत ने कहा—यह शोक का समय नहीं है अब एक बार मुस्कुरा दो, तुम्हारी मुस्कुराहट मेरे जी में नया जोश

पदा करेगी। और उसकी स्मृति में बिजली के समान चमक कर अँधेरी से अँधेरी रात में भी मुझे आशाओं से उभारती रहेगी।

प्रमीला ने मुस्कुरा दिया—उस समय उसके होठों पर हँसी थी और आँखों में आँसू। उसके चेहरे की काँति ऐसी सजीली हो उठी थी कि इन्द्रजीत मतवाला हो गया। और "जयशंकर की" कहकर निकला, बाहर खड़े हुये रथ में बैठ फौरन लंका को रवाना हो गया। जब तक वह दिखलाई पड़ा, देवी प्रमीला खिड़की में बैठकर एकटक देखती रही और पार्वती से उसके शीघ्र सकुशल वापस आने की प्रार्थना करती रही। एक समय ऐसा भी आता है कि लोग जैसा सोचते हैं वैसा नहीं होता! प्रमीला को भी ऐसे ही समय का कटु अनुभव करना पड़ा। प्रातःकाल हो गया, पर इन्द्रजीत वापस न आया। फूल फूले, कलियाँ खिलीं, चिड़ियाँ बोलीं, पर प्रमीला को कुछ भी अच्छा न लगा। उसका नन्दन वन एक ही रात में उजाड़ सा दिखाई पड़ने लगा।

रास्ता देखते-देखते जब शाम हो गई, तो प्रमीला ने अपनी सखियों से कहा—स्वामी नहीं आये, उन्होंने वादे के के खिलाफ कभी कोई काम नहीं किया। अवश्य वे किसी संकट में फँस गये हैं अब मैं स्वयं लङ्का चलूँगी, सखियों को सम्बोधन कर कहा—बोलो, कौन-कौन मेरे साथ चलोगी?

सखियों में से एक ने कहा—युवराज्ञी रात हो गई है

लङ्का के सब फाटक बन्द हो गये होंगे। बाहर राम की सेना पड़ी है बड़ी मुश्किल का सामना है। हमारी समझ में आज रात भर और युवराज का रास्ता देखना चाहिए।

कड़क कर प्रमीला ने उत्तर दिया—लङ्का के फाटक खुलेंगे और राम को मुझे रास्ता देना होगा। मैं बहुत बाद विवाद नहीं करना चाहती जिसे चलना हो फौरन चलो?

प्रमीला को अपने निश्चय पर दृढ़ देख सखियों ने उसी क्षण तैयारी की। एक रंग के श्यामवर्ण, हवा के समान तेज़ चलने वाले घोड़े तैयार किये गये। रंग बिरंगे वस्त्राभूषणों से तथा अस्त्र शस्त्र से सुसज्जित होकर सारी सखियाँ उन पर सवार होगईं। सबसे ऊँचे और तेज घोड़े पर प्रमीला बैठी। उस समय ऐसा मालूम होरहा था मानो पृथ्वी पर एक दूसरा चन्द्रमा तारिकाओं की एक बड़ी सेना के साथ उदित हुआ है। यह दृश्य देखने ही योग्य था।

अन्धकार मयी नीरव निशा में सहसा घोड़े के टापों की आवाज़ सुनकर राम की सोती हुई सेना जाग उठी। हनुमान जी आदि सोचने लगे कि रावण को कहीं बाहर से बड़ी भारी मदद तो नहीं आ रही है? इधर भी लोग आने वाली आपत्ति का मुकाबिला करने के लिए तैयार होने लगे।

प्रमीला ने सोचा कि राम को बिना सूचना दिये उनके शिविर से होकर चलना ठीक न होगा। इसलिये उसने राम के नाम एक पत्र लिखा और अपनी तीन सहेलियों को देकर

कहा—राम से फौरन इसका जवाब लाओ। पत्र का आशय यह था—

मेरे परम शत्रु राम ?

मैं रावण की पुत्रवधू प्रमीला, अपने स्वामी इन्द्रजीत से मिलने लंका में जाती हूँ। मैं स्वामी से मिलने में एक क्षण भी व्यर्थ नहीं बिताना चाहती। इसलिये मुझे लंका में निर्विघ्न आने दोगे, ऐसी आशा है। पर यदि बाधा उपस्थित करोगे तो बलपूर्वक लंका में प्रवेश करूँगी, इसमें सन्देह नहीं। अपने निश्चय से शीघ्र सूचित करो।

प्रमीला।

तीनों सहेलियों को हनुमान जी ने बीच में रोक लिया। और इतनी रात में उनके शिविर में प्रवेश करने का कारण पूछा। एक ने जवाब दिया—"हम प्रमीला युवराज्ञी की सखियाँ हैं। राम से मिलने आई हैं, एक अत्यन्त आवश्यक विषय पर बात करनी है।

क्या बात कहनी है, हमसे कहो ?

राम से जो कहना है वह तुम से, उनके नौकर से कैसे कहें। यह सुन कर हनुमानजी कुछ लज्जित से होकर उन्हें राम के पास ले गये। पर रास्ते भर वह यही सोचते रहे कि कहीं ये स्त्री के वेश में राक्षस न हों।

तीनों सखियों ने हाथ जोड़ कर राम को प्रणाम किया और प्रमीला का पत्र उनके हाथ में दे दिया। पत्र पढ़ते ही

राम ने गम्भीर स्वर से कहा पतिव्रता नारी के मार्ग में बाधा उपस्थित करना राम का काम नहीं है। प्रमीला देवी हमारे शिविर को अपना घर समझें। और चाहे जिस मार्ग से लङ्का में प्रवेश करें। हम उनका हृदय से स्वागत करते हैं और लङ्का प्रवेश करने में उनकी हर प्रकार से सहायता करने को तैयार हैं। राम की सौम्य मूर्ति देख कर और उनका मधुर भाषण सुनकर तीनों सखियाँ उनपर मुग्ध हो गईं। और हृदय से उनके शील स्वभाव की प्रशंसा करती हुई बाहर आईं।

अपनी सखियों के मुख से राम की, अपने प्रति सहानुभूति की बात सुनकर प्रमीला अत्यन्त प्रसन्न हुई। और तुरन्त अपनी सुन्दर सखियों की छबिमयी सेना के साथ आगे बढ़ीं। शिविर में दोनों ओर से राम के सैनिक यह मनमोहक दृश्य देखने के लिये खड़े हो गये। मालूम होता था मानो मदन की सवारी निकल रही है। राम भी इस सुन्दर सेना को देखने के लिये एक स्थान पर खड़े होगये। जब प्रमीला का घोड़ा उनके पास पहुँचा तो उसने अपनी तलवार उठाकर राम का अभिवादन किया और आगे बढ़ गई। दूसरे दिन प्रातःकाल जब सब नर वानर सो कर उठे तो वे आपस में कहने लगे, कि क्यों भाई, कल रात को जो दिव्य दर्शन हम लोगों को मिला वह क्या था? लङ्का के सुन्दरियों की सेना या कोई सपना?

राम के शिविर के पश्चात ही लङ्का में भी प्रमीला के आने का शुभ समाचार उमड़ती हुई घनघटा के समान बात की बात में चारों ओर फैल गया। इन्द्रजीत बड़ी प्रसन्नता से उसका स्वागत करने आया। उसे देखते ही उसने अपनी बाहें फैला दीं। प्रमीला दौड़ कर पति की बाहों में इस प्रकार आवद्ध होगई जैसे दिन भर के परिश्रम के बाद कोई पक्षी अपने चिर परिचित घोंसले में बेधड़क घुस जाता है। इन्द्रजीत ने कहा—प्रिये तुम ने तो देखा ही होगा कि राम कैसा प्रबल शत्रु है। इसीलिये आने में देर होगई थी। खैर—तुम आगई हो यह अच्छा 'हुआ। अपनी मनोहर वाणी से माता का मनोविनोद करो। मैं अब अंतिमबार राम से लड़ने जाता हूँ। इस बार उसे जरूर हराऊँगा। प्रमीला ने कहा—मेरे प्राण! मेरे बहादुर सिपाही—मुझे किसी बात का भय नहीं था, पर मैं तुम्हें एक बार और देखना चाहती थी। इतना कहना था कि प्रमीला का गला भर आया, भयकी रेखा ने उसके सारे शरीर को कँपा दिया। वह रो पड़ी, और उसने अपना सुन्दर मुख पति की छाती में छिपा दिया।

इन्द्रजीत ने प्यार से उसके फूल के समान कोमल चेहरे को ऊपर उठाया उसकी आँखों में देखा, और कहा, मैं विश्व विजयी हूँ पर तुम्हारे इन प्रेम के आँसुओं का बन्दी हूँ। प्रिये! ज़रा हँस दो मुझे बंधन से मुक्त करो और मुझे रण

की ओर अग्रसर होने दो। प्रमीला ने कहा—मेरे स्वामी! मेरे हृदयेश! मेरे सर्वस्व! तुम्हारे मार्ग में बाधक नहीं बनूंगी। जाओ बड़े उत्साह से तुम्हारा रास्ता देखूँगी। देवी पार्वती तुम्हें शीघ्र।सफल करके वापस भेजें।

प्रमीला से विदा लेकर इन्द्रजीत अग्नि देवता की पूजा करने के लिये मन्दिर में घुसा। उस समय वह स्वयं ही अग्निदेवता सा मूर्तिमान हो रहा था। क्योंकि वह केवल पूजा करने के विचार से मंदिर में घुसा था। जब वह अपनी पूजा में नतमस्तक होकर तल्लीन हो रहा था। उसके चाचा विभीषण ने एक गुप्त मार्ग से लक्ष्मण को वहाँ दाखिल कर दिया। लक्ष्मण जानते थे कि इन्द्रजीत का खुले मैदान में हराना कठिन है इसलिये मौका पाकर ही वे उसका बध करना चाहते थे।

इन्द्रजीत ने जब अपना मस्तक उठाया तो सामने लक्ष्मण को खड़े देखा। उसने समझा कि स्वयं अग्निदेवता प्रगट हो गये हैं। बस हाथ जोड़ कहने लगा—ओह अग्नि देव! मुझे बरदान दो कि दोनों भाइयों (राम लक्ष्मण) का वध करके अपने भाइयों की स्वर्गीय आत्माओं को सन्तुष्ट करूँ।

लक्ष्मण ने बादल के समान गरज कर कहा—इन्द्रजीत अपनी आँखें खोलो। मैं अग्निदेवता नहीं तुम्हारा काल लक्ष्मण हूँ। इन्द्रजीत ने समझा कि अग्निदेवता उसके हिम्मत की परीक्षा लेना चाहते हैं, शायद इसीलिये शत्रु के

रूप में प्रगट हुए हैं। उसने कहा—देव—मेरी परीक्षा! लक्ष्मण ने कड़क कर कहा—होश में आओ!

मैं तुम्हारा देवता नहीं, तुम्हारा काल हूँ? पागल तो नहीं हो गये?

तुम लक्ष्मण हो तो यहाँ आये कैसे? यह रास्ता तो सिवाय राजघराने के लोगों के और किसी को मालूम नहीं।

लक्ष्मण ने कहा—इससे तुमसे कोई मतलब नहीं तुम्हारे लिये इतना ही काफी है कि मैं तुम्हारा काल हूँ, लक्ष्मण हूँ।

इन्द्रजीत ने कहा—यदि तुम वास्तव में मेरे शत्रु लक्ष्मण ही हो तो मुझे भी अपनी तलवार ले आने दो। मैं इस समय बिना हथियार के हूँ। फिर, देव मन्दिर युद्ध के लिये उपयुक्त स्थान भी नहीं है।

लक्ष्मण ने कहा—चाहे जो हो। शेर को पिजड़े में पाकर फिर उसे बिना मारे छोड़ देना ठीक नहीं है। मैं तुम्हारा प्राण लेने आया हूँ और वह लूँगा।

इन्द्रजीत ने कहा, लक्ष्मण! तुम्हारी बहादुरी को धिक्कार है! निहत्थे से लड़कर अपनी क्षत्रिय जाति को कलंकित मत करो।

राक्षस का उपदेश मुझे मान्य नहीं है। यह कहते हुए लक्ष्मण ने उस पर हमला कर दिया। और कोई उपाय न देख पूजा के पात्रों से ही इन्द्रजीत ने लक्ष्मण का मुकाबिला किया और उन्हें ऐसा मारा कि वे घायल होकर गिर पड़े।

तब वह अपना हथियार लेने के लिये मंदिर से बाहर की ओर भागा। पर विभीषण उसका मार्ग रोके खड़ा था। उसे देखते ही इन्द्रजीत ने कहा—विश्वासघाती चाचा! तुमने यह क्या किया ?

कुछ नहीं-कर्त्तव्य पालन !

क्या शत्रु के हाथ में भतीजे का सौंपना तुम्हारा कर्त्तव्य है।

क्यों नहीं? क्या तुम नहीं जानते कि मैं रामका सेवक हूँ।

बने रहो राम के सेवक! पर मुझे मेरा हथियार तो ले आने दो।

इन्द्रजीत यह विभीषण से कह ही रहा था कि इतने में लक्ष्मण स्वस्थ हो उठे और दूर से ही उन्होंने ऐसा तीर मारा कि वह धराशायी हो गया। अथाह रक्त के एक तालाब में डूबने सा लगा। मरती हुई सांस से उसने कहा—लक्ष्मण मेरा पिता रावण इसका बदला चुका लेगा तुम उसके क्रोध से बच नहीं सकोगे। विभीषण! जिस भतीजे को तुमने गोद में खिलाया था। जिसे अनेक बार प्यार किया था उसीके साथ ऐसा विश्वासघात करके, कहते हो कर्त्तव्य का पालन किया—धिक्कार है! फिर उसने कहा—प्यारे पिता और माता तुम मेरा रास्ता देखते होगे पर मैं अब इस संसार से कूच कर रहा हूँ। इसके बाद उसने चिल्लाकर कहा-प्रमीला! प्रमीला!! प्यारी प्रमीला!!! तुम मेरे बिना कैसे रहोगी। आह! आज मैं असमर्थ हूँ तुमसे वादा किया उसका पालन नहीं हो सकता।

देवी पार्वती से प्रार्थना करना कि हम लोग शीघ्र ही फिर मिलें।।

मंदिर के बाहर राक्षसों की सेना इन्द्रजीत की बाट देख रही थी। जब उसके आने में देर लगी तो एक सैनिक ने दीवाल पर चढ़कर मंदिर में झांका। उसने देखा कि इन्द्रजीत का मृत शरीर पृथ्वी पर पड़ा है। सारी लंका में कुहराम छा गया रावण के सारे मनसूबे मिट्टी में मिल गये। मंदोदरी के लिये अब धैर्य्य धारण करना कठिन हो गया। उसने प्रमीला से कहा—बेटी अब एक मात्र तू ही आधार है। पर प्रमीला ने आंखों में जल भर कर उत्तर दिया, माँ! स्वामी ही मेरे सर्वस्व थे अब वे नहीं रहे तो यह संसार मेरे लिये सूना है। मेरे कोई संतान भी नहीं है। मुझे पति के शीघ्र दर्शन कराओ।

इन्द्रजीत का शरीर विमान में रक्खा गया और राजसी ठाट बाट के साथ उसे राक्षस लोग समुद्र के किनारे ले चले। रावण ने राम से एक रोज युद्ध बन्द रखने की प्रार्थना की जिसे राम ने तत्क्षण स्वीकार किया और उसके पुत्र की मृत्यु पर बड़ा खेद भी प्रकट किया। समुद्र के किनारे चिता बनाई गई और उस पर इन्द्रजीत का शरीर रख दिया गया। प्रमीला ने अपने सारे आभूषण आदि अपनी सखियों को भेंट किये और उन्हें अपने घर लौट जाने का आदेश दिया। फिर उसने मंदोदरी और रावण के चरण छूकर स्वामी के चिता की सात बार परिक्रमा की। चिता में आग लगा दी गई और

फूलबदनी प्रमीला ने बसन्त की शीतल हवा के झोंकों के समान भीषण लपटों का आलिंगन किया।

रावण और मन्दोदरी आदि सब चिल्लाने लगे—आह! अग्नि...इन्द्रजीत...प्रमीला...

इस प्रकार सती प्रमीला ने स्वर्गारोहण किया। रावण ने हज़ार संकटों के उपस्थित होते हुए भी उस स्थान को चिर-स्मरणीय बनाने के लिये वहां पर विशाल सती चबूतरा और पास ही एक मंदिर बनवा दिया। वह स्थान आज भी एक पवित्र और तीर्थ स्थान माना जाता है।

मीराबाई

मीराबाई ।

मीरा बाई एक राजपुत्री थी, इनका जन्म सन् १५५५ ई० में कुड़की नामक गाँव में हुआ था। यह अपने माता पिता की इकलौती पुत्री थीं। जिस समय बाई जी युवावस्था में थीं, उस समय इस अभागे भारत पर यवनों का दौरा था। और यवन सम्राट अपने अपूर्व प्रताप सहित इस भारत भूमि पर राज्य करने को प्रस्तुत थे।

बाई जी की भगवद्भक्ति इस कलियुग में सचमुच सरा-

हनीय है। जिस प्रशंसनीय वीरता और साहस से इस वीर देवी ने अपनी भगवद्भक्ति उस कठिन समय में निवाही यह इतिहास से ज्ञात होता है कि इनको बाल्यकाल से ही गिरधर लाल जी के रूप से अलौकिक प्रीति थी। इनके भगवद्भजन में इस भांति तल्लीन होने की जो अपूर्व कथा है वह इस भांति है।

जब यह पांच वर्ष की अबोध बालिका थीं, तब एक दिन किसी पड़ोसी की कन्या के विवाह में गईं। जब उन्होंने बारात आते देखी तो अपनी माता से बाल्यकाल की चपलता के कारण पूछा—हे माता, मेरा पति कौनसा है।

माता ने हंसते हंसते इस गम्भीर हृदय बालिका को गिरधर लालजी की ओर संकेत करके कहा—पुत्री यही तुम्हारे पति हैं। बस, कहते हैं उसी दिन से गिरधर लालजी ही को यह अपना सर्वस्व मान बैठीं और फिर तो ऐसा प्रेम उत्पन्न हुआ और इतना बढ़ा कि एक क्षण भी उनकी मूर्ति देखे बिना चैन नहीं पड़ता था। इनका विवाह अठारह वर्ष की अवस्था में महाराना सांगा जी के कुँवर भोज राजा के साथ सन् १५७३ ई० में हुआ था। पति गृह जाते समय वह गिरधर लाल जी की मूर्ति से बिछुड़ने के कारण अत्यन्त दुखी हुईं। अन्त में अपनी माता से स्पष्ट शब्दों में कह दिया—मैं तो गिरधर लाल जी ही के चरणों में अपना तन मन सब न्यौछावर कर चुकी हूँ और अब तो उन्हीं की सेवा करके सती होऊँगी।

निदान अपनी उसी गिरधर जी की मूर्ति को लेकर अत्यन्त प्रसन्नता से पति गृह गईं। इस बाल्यकाल में ऐसी अपूर्व भक्ति भी इतिहास के दृष्टान्तों में कम देखने में आई होगी। सचमुच बाई जी तुम धन्य हो। मीराबाई जो कि राजरानी क्या, अपने सराहनीय गुणों के कारण देवी के पद पर आरूढ़ होने के योग्य थीं। उनके भाग्य में बली विधाता ने देवी या राजरानी के से सुखों का भोग नहीं लिखा था वरञ्च इनको अपने प्रारब्ध से बिल्कुल उल्टी ही रीति से लड़ाई करनी पड़ी यह भवगान के उन कोमल और सुन्दर पुष्पों में से थीं जिन को जगदीश्वर बिना खिले ही कुम्हलाने की आज्ञा दे देता है। यह परमात्मा के उन देदीप्यमान उज्वल रत्नों में से थीं, जिनके प्रकाश के सामने पापी मनुष्यमात्र कदाचित अपनी आंख भी ऊँची नहीं कर सकते। हे! विधाता तुम्हारी कड़ी दृष्टि के सामने राजाओं का मान, देवताओं का तेज ऋषियों का त्याग और देवियों का साहस क्षण भर में धूलि धूसरित हो जाता है।

इसी भांति इन भगवती को भी पतिगृह में प्रवेश करते ही दुखों के मेघ मंडलों ने आ घेरा। सबसे प्रथम तो इनकी सास से अनबन हुई, सास ने इनको दुर्गापूजन करने की आज्ञा दी जिसका उद्देश्य यह था कि मीरा जी के सुहाग की वृद्धि हो। जिस समय मीराबाई को अपनी सास के उद्देश्य का पता लगा। उस समय उन्होंने वीरता से यह उत्तर दिया कि प्रारब्ध से हठ करना योग्य नहीं। जो ललाट में लिखा होगा

सो हो जायगा। और दूसरे मैं गिरधारीलालजी की उपासिका हूँ। इससे और किसी के सामने शीश न नवाऊँगी। सास उनका यह उत्तर सुनते ही क्रुद्ध होगई और उस दिन से मृत्यु पर्यन्त माता-पिता तुल्य सास-ससुर अपनी इस देवी पुत्रबधू के शत्रु बन बैठे, तथा कठोर विधाता की आज्ञा से दस वर्ष के भीतर ही भीतर इनके पूज्य पतिदेव भी इस संसार से परलोक को कूच कर गये। परन्तु सहनशील मीरा इन सब दुखों को बड़ी धीरता के साथ सहन करती गईं और इनकी भगवद्भक्ति शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा की भांति बढ़ती ही चली गई। पति की मृत्यु के पश्चात उनका छोटा देवर सिंहासन पर बैठा, वह इनके लिये काल के समान था। यह अपने इस छोटे भ्राता समान देवर के तिरष्कारों से सदा दुखित तथा खिन्न रहती थीं। देवर ने इनकी ननद उदाबाई को भगवद्भक्ति से फेरने के लिये भेजा। उदाबाई ने इनको अनेक प्रकार से समझाया और बताया कि इस प्रकार से साधु सन्तों की संगति में बैठने उठने से दोनों राजकुल कलंकित होते हैं परन्तु वह अपने विचारों पर अचल और अटल रहीं। उल्टी उदाबाई ही इनकी इस अपूर्व भक्ति को देख कर इनको अपना गुरु मानने लगीं। जब इनके ऊपर उदाबाई के उपदेशों का कुछ भी असर न पड़ा, तो राजा ने एक प्याला विष का चरणामृत कहला कर मीराबाई के पास भेजा, परन्तु उदाबाई ने मोह वश, इनसे पहिले ही आकर सारी वार्ता

सुनादी, तो भी मीराबाई इस विष के प्याले को विष जानते हुए भी चरणामृत नाम मात्र का तिरस्कार करना योग्य न जान अपने अमूल्य प्राणों को भी त्यागने को प्रस्तुत होगईं। यहाँ पर भगवान ने अपने प्रिय भक्त की लाज रखी और हलाहल को अमृत में बदल कर दिखा दिया। राना तो मीराबाई के प्राण परित्याग का संदेशा सुनने के लिए उत्सुक थे परन्तु उधर मीरा पर इस विष का प्रतिकूल ही प्रभाव पड़ा। उस हलाहल से दूना नशा उसे भगवत प्रेम का चढ़ा और कहते हैं कि इसका प्रभाव द्वारका में रणछोड़ जी की मूर्ति पर जाकर पड़ा और उसके मुख से आग निकलने लगी।

कहते हैं कि एक बार ऊदाबाई ने इनसे बड़ी दीनता तथा प्रेम से कहा कि हमको गिरधारी जी के प्रत्यक्ष दर्शन करादो। मीराबाई उनकी सच्ची उमंग को देख कर पूजा की तैयार कर प्रेम और विरह के पद बना बना कर गाने लगीं, परन्तु उनके घंटों कीर्तन करने पर भी श्रीकृष्ण ने अपने पवित्र दर्शनों से उन्हें कृतार्थ न किया। फिर तो बाई ही असह्य वेदना से अधीर हो उठीं। उनके इस भांति अधीर हो जाने पर आधी रात के समय मीराबाई को भगवान के साक्षात दर्शन हुए और भगवान ने अपने भक्त के साथ उसी रात भोजन भी किया। पहरेदार ने पुरुष की शब्द सुन कर उस अर्द्ध रात्रि के समय, राजा को जगा कर कहा कि मीराबाई किसी पुरुष से वार्तालाप कर रही हैं। यह सुन कर राना

खड्ग लेकर महल में गये। परन्तु जब वहां कोई भी न दीख पड़ा तो अन्त में खिसिया कर मीरा से पूछने लगे—तुम किस से वार्तालाप कर रही थीं ?

मीराबाई बोलीं—मेरे परम मित्र गिरधारीलाल जी हैं, जो तुम्हारी आंखों के सामने विराजमान हैं। मुझसे क्यों पूछते हो। राना ने चारों ओर दृष्टि फैला कर देखा, परन्तु सिवाय मीरा के कोई न दीख पड़ा। कुछ देर पश्चात उन्हें पलंग पर एक भयानक रूप दिखाई दिया। जिसे देख राजा थरथरा कर पृथ्वी पर गिर पड़े। फिर यह कह कर भागे कि हमारे कुलदेव एकलिंग जी हैं। उनका इष्ट क्यों नहीं करती। तुम्हारे इष्टदेव की तो बड़ी भयानक मूर्ति है।

इतने चमत्कार देखने पर भी दुष्ट राजा की मनोवृत्ति न गई। मीराबाई अशोक वाटिका में राक्षसियों से घिरी हुई सीता की भांति इस राजभवन में पहरेदारों के पहरे में अपने जीवन के कठिन दिन बिताने लगीं। एक दिन राजा ने एक पिटारी में नागिन बन्द करके पूजा के फूल और हार के नाम से भेजी जब मीरा ने पिटारी खोली तो सालिगराम की मूर्ति और फूलों से सुगंधित हार निकले।

विश्व नियन्ता की अद्भुत गति जानी नहीं जाती। वह जगदीश्वर अपने विशाल बाहुओं से किस समय किसकी रक्षा करना चाहता है। यह कौन जान सकता है। फिर भी राना, मीरा की भक्ति में विघ्न डालते ही रहे। अंत में

मीराबाई ने चित्तौड़ त्यागने का निश्चय पक्का कर लिया। ऊदाबाई को अपने उद्देश्य का पता दे अपने आप अर्द्धरात्रि के समय गेरुआ वस्त्र पहन कर अपनी कुछ दासियों के साथ चित्तौड़ त्याग अपने मायके मेड़ता पहुँची। सच्ची भक्ति इस को कहते हैं। जिन रमणियों को अबला के नाम से पुकारा जाता है। उनमें से एक ने सबला बनकर ऐसे साहस और धैर्य्य से काम लिया। विश्व नियन्ता परमेश्वर की गति कुछ जानी नहीं जाती, वह अपने भक्तों के हृदयों में कुछ अपूर्व ही ज्ञान का विकाश कर देता है। दुखिया मीरा को मायके पहुँच कर भी सुख न मिला, वरञ्च वहाँ लाँछनाओं तथा तिरस्कारों से अपमानित की गई, और साधु सन्तों के हटाने का भी प्रबन्ध होने लगा। इससे कुछ दिन पश्चात् आप वृन्दावन सिधारीं। वृन्दावन पहुँच कर आपने गोस्वामी जी को देखने की इच्छा प्रकट की, परन्तु गोस्वामी जी ने उत्तर दिया कि वह स्त्रियों से नहीं मिलते। इस पर बुद्धिमती मीरा ने उत्तर दिया—मैं तो वृन्दावन में सबको सखी रूप समझती थी, केवल गिरधर लाल जी ही को पुरुष सुना था परन्तु आज ज्ञात हुआ कि उनके और भी पट्टीदार हैं। यह प्रेम रस से पगे हुए मधुर वचनों को सुनकर स्वामी जी अत्यन्त लज्जित हुए और जाकर बड़े आदर भाव से बाई जी को लिवा लाये। मीराबाई को बुलाने के लिये राजा ने मंत्रियों द्वारा बड़ा प्रयत्न किया। परन्तु मीरा चित्तौड़ जाने के लिये

किसी भांति राज़ी न हुई। अंत में उन मंत्रियों ने बाई जी को यह कहकर धमकी दी कि जब तक आप हमारे साथ नहीं चलेंगी, हम अन्न जल नहीं छुयेंगे।

कराल काल ? तुम्हारी विकट दृष्टि उस सच्चिदानन्द के कोमल से कोमल सुकुमार कुसुम को भी नहीं छोड़ती। तुम सब के लिये समान हो। परन्तु तो भी तुम्हारी गोद की चिरनिद्रा में सोकर सांसारिक जीव सच्चे सुख का लाभ करते हैं। तुम दुखी के दुख में वियोगी के वियोग में दरिद्री के दरिद्र में, कारुणिक की करुणा में निवास करने वाले हो। शायद तुम्हारी इसी शांति तथा सहानुभूति से परिपूर्ण गोद में शयन कर मीरा ने अपने समस्त सांसारिक दुखों तथा लाँछनों से छुट्टी पाई हो। परम भक्त मीरा बाई के क्षण-भंगुर जीवन का बस यहीं अन्त है। अब उनकी मेधा शक्ति का जिसके कारण कि उनका नाम गगन मंडल में सूर्य्य चंद्रमा की भांति इस पृथ्वी पर बना रहेगा लिखा जायगा।

यद्यपि मीरा बाई को इस संसार से सिधारे बहुत समय हो चुका परन्तु अब भी उनकी स्मृति स्थायी है और रहेगी।

वीरबाला मुक्ता

महाराज अमर सिंह जो चौहान वंश के क्षत्रिय थे अपने परिवार के साथ सदा चित्तौड़ में ही रहते थे। उनके एक कन्या थी जिसका नाम 'मुक्ता' था परन्तु महाराज अमर सिंह प्यार से सदा उसे 'मोती' कह कर पुकारते थे।

वीरबाला मुक्ता।

इसमें सन्देह नहीं कि मुक्ता और मोती शब्द अलग २ हैं परन्तु भावार्थ दोनों का एक ही है। कन्या का नाम मुक्ता यथार्थ में सत्य था जिस प्रकार की चमक दमक मोती या मुक्ता में पाई जाती है वह चमक, दमक शूर वीरता और साहस उस कन्या में भी विद्यमान था, सारा राजस्थान उसके सौन्दर्य की प्रशंसा करता था। उसकी माता कनकरोहिणी उसे बहुत चाहती थीं। माता जब तक जीवित रहीं मुक्ता को आँख का तारा समझती रहीं, परंतु माता के स्वर्गवास होने के कारण सारा भार राजा अमरसिंह पर पड़ा।

मुक्ता सदैव पिता के साथ रहती थी उसमें स्वयं ही क्षत्री-पन के गुण विकसित हो गये थे। तलवार चलाना, शिकार खेलना, चौगान खेलना और शब्दवेधी बाण मारना आदि तो उसके लिये नित्यप्रति का खेल था। पिता अपनी पुत्री मुक्ता की इस प्रकार की लीलायें देख कर प्रसन्न हुआ करता था और हर प्रकार के कार्यों में उससे परामर्श लिया करता था। बिना उसकी सम्मति के कोई काम न करता था।

महाराज अमरसिंह का एक चचेरा भाई था जिसका नाम केशरी सिंह था। कई कारणों से इन दोनों में अनबन रहा करती थी। यहाँ तक कि एक दूसरे को प्राण लेने के लिये तत्पर रहा करते थे। मुक्ता इस बात को जानती थी परन्तु बिना पिता की आज्ञा कुछ करने और कहने का साहस न करती थी।

एक दिन जब राजा अमरसिंह शिकार खेलने के लिये जंगल में गये हुये थे तो मुक्ता भी अपने शिकारी भेष से पिता के साथ थी। दोनों अपने २ घोड़ों पर सवार जंगल में घूम रहे थे कि एक ऐसे स्थान पर पहुँचे जहाँ शेरों का अड्डा था। दोनों बेखटके वहां तक चले गये क्योंकि दोनों को अपने तीर तलवारों का पूरा भरोसा था। परंतु, संयोग से अमर सिंह का घोड़ा पीछे रह गया और मुक्ता आगे बढ़ गई। वह जंगल बिलकुल सुनसान था। शेर की गरज सुनकर मुक्ता एक पेड़ के नीचे ठहर कर सोचने लगी कि अब क्या करना चाहिए उसके हाथ में तलवार थी और धनुष कांधे से लटक

रहा था, वह विचार ही कर रही थी कि शेर को देख कर अपने तीर का निशान बनाऊँ। धनुष काँधे से निकाल ही रही थी कि शेर तड़पता हुआ उसके ऊपर आ पहुँचा और आते ही घोड़े के सिर पर एक पंजा जमाया। घोड़ा तो घायल होकर उसी जगह लोट गया परंतु 'मुक्ता' ललकार मारती हुई अपनी तलवार को शेर पर चला ही दिया कि जिसकी चोट खाकर शेर अलग जा गिरा परन्तु गरजता हुआ फिर 'मुक्ता' पर धावा करने ही को था कि इतने में एक राजपूत घोड़ा दौड़ाता हुआ उस ओर आ निकला और मुक्ता की दशा देख कर झपटा घोड़े से नीचे कूद कर एक तरफ खड़ा होगया और घोड़ा राजपूतनी के लिये देकर आप शेर के सन्मुख जा खड़ा हुआ। राजपूत भी बल का भण्डार ही था उसके हाथ उसके हाथ थे नंगी तलवार थी शेर उछलने ही वाला था कि उसने उस पर तलवार चलाई और अपना वार पूरा करके झट झाड़ी की ओट में जा छिपा।

मुक्ता आश्चर्य में पड़ गई कि वह नवयुवक कौन था? ऐसे समय में उससे पूछने का भी मौका न था कि उसका परिचय ज्ञात करती परंतु एक ही दृष्टि से उसने उसके प्रतापशाली मुख को देख लिया। स्त्रियों की दृष्टि बिजली से भी अधिक तेज होती है। राजपूत की चाल ढाल और उसकी चेष्टा 'मुक्ता' की आँखों में समा गई। उसकी पगड़ी की कलँगी हवा में फहरा रही थी जिसे देख कर मुक्ता ने

समझा कि अवश्य यह कोई सुशील और माननीय राजपूत है। उसका सुंदर घोड़ा और सामान बतला रहा था कि वह कोई उच्च कुल वंशावतंश है।

राजपूत झाड़ी में छिपा था। शेर बुरी तरह घायल था परंतु क्रोधित हो वह पुनः उछलने ही को था कि 'मुक्ता' ने अपनी तलवार से उसका काम तमाम कर दिया। एक लम्बी चीत्कार करता हुआ शेर चल बसा और आप खड़ी होकर विचार करने लगी। इतने में अमरसिंह स्वयं घोड़े को दौड़ाते हुए आ पहुँचे। जब उसने देखा कि एक ओर मुक्ता का घोड़ा मरा पड़ा हुआ है और दूसरी ओर शेर मरा पड़ा है तो उसको बड़ा आश्चर्य हुआ क्योंकि शेर बहुत भयानक था उसने समझा कि मुक्ता के घोड़े को मरा हुआ देख किसी मनुष्य ने अपना घोड़ा दे दिया है। अमरसिंहने न तो मुक्ता से कोई प्रश्न किया न मुक्ता ही ने कुछ बताया कि उसे घोड़ा देने वाला कौन मनुष्य था। अमरसिंह ने झट लौटने की तैयारी की और मुक्ता भी अमरसिंह के पीछे उस नये घोड़े पर चढ़ नगर को वापस आई। आते ही पिता से सारा वृत्तान्त कह सुनाया।

अमरसिंह को अनुमान तो हो गया कि उसकी पुत्री मुक्ता की रक्षा करने वाला कौन था परंतु उसने जान बूझ कर कुछ नहीं कहा। इसके बाद उस दिन से इस विषय में कोई बात-चीत नहीं की।

अमरसिंह के दिल में अपने शत्रु केशरीसिंह के प्रति दिन

पर दिन शत्रुता की आग बढ़ती गई। केशरीसिंह स्वयं सदैव उसकी ताक में रहता था। वह समय आजकल के समय से विशेष मूर्खता का समय था। हिन्दू लोग मारन, उच्चाटन मंत्रों पर भी विशेष विश्वास रखते थे और इसी मूर्खता के जाल में फंस कर प्रायः तंत्र मंत्र के साधन में लगे रहते थे जहां पर किसी प्रकार का बश नहीं चलता था। वहां किसी तान्त्रिक पंडित को बुलाकर पुरश्चरण करते अथवा इसी प्रकार के अन्य उपायों से काम लेते थे। अमर सिंह में केशरी सिंह का सामना करने की ताकत नहीं थी। इसलिये जब काली त्रयोदशी का दिन आया तो आधीरात के समय श्मशान भूमि में मंत्र सिद्ध करने के लिये चला। ताकि मंत्र की सहायता से शत्रु का संहार करे। इस मूर्खता का कोई ठिकाना है परन्तु विश्वास भी संसार में एक अद्भुत चीज है। जब सब सो गये तो निर्भयता से श्मशान पर गया। वहाँ पर उसे एक और मनुष्य मिला जो उससे कुछ पहिले ही मंत्रसिद्ध करने के लिये गया था। अमरसिंह को देखते ही उस पहिले मनुष्य क्रोध आ गाया क्योंकि वह एक मुर्दा की छाती पर बैठा मंत्र पढ़ रहा था। अपनी क्रिया को भंग होता देख झट उठा और झपट कर अमरसिंह के पास आ कहने लगा—चाण्डाल! तेरे कारण मेरा तो सर्वस्व काम चौपट होगया और अब तुझी को मार कर तेरी छाती पर बैठ अपना मंत्र सिद्ध करूंगा!

दोनों में गुत्थमगुत्था होने लगी। अमरसिंह डर गया निर्बलआत्मा वाले मनुष्य अपने वास्ते आप ही विपत्ति बुला लेते हैं। उसने उसका कंठ इस प्रकार दबाया कि वह सँभल न सका और भूमि पर आ गिरा। वह उसकी छाती पर बैठ कमर से छुरी निकाल उसको मारना ही चाहता था कि इतने में एक वार राजपूत घोड़े को दौड़ाता हुआ वहां आ पहुँचा और अग्नि के उजाले में अमरसिंह की दशा देख घोड़े से नीचे उतर पड़ा और मारने वाले के हाथ से छुरी छीन कर बलपूर्वक उसको हटा दिया और अमरसिंह को उठाकर उसकी चेष्टा को देख कहने लगा, अमरसिंह! यह श्मशान भूमि तुम्हारे रहने का स्थान नहीं है, यहां चण्डाल और अघोरी रहते हैं। उठो महल में जाओ। यह तलवार मैं तुम्हें देता हूँ कि मार्ग में कोई मनुष्य फिर तुम पर आक्रमण न कर सके।

अमरसिंह से बात चीत कर जब वह राजपूत घोड़े पर चढ़ कर चला तो उसकी दृष्टि एक सुन्दर स्त्री पर पड़ी जो हाथ में चमकती तलवार लिये हुये घोड़ा सरपट छोड़े चली आ रही थी। उसकी तलवार इस प्रकार लपलपाती थी कि मानों किसी शत्रु के खून की प्यासी हो। वह स्त्री और कोई नहीं अमरसिंह की लड़की मुक्ता थी। वह अपने पिता की चाल ढाल सदैव देखा करती थी। जब उसने उसको आधी रात के समय जाते हुये देखा तो स्वयं उसके पीछे-पीछे चली आई ताकि आवश्यकता के समय उसकी सहायता कर सके।

नवयुवक उस स्त्री को देख राह काट कर एक तरफ को चल पड़ा। मुक्ता थोड़ी दूर तक उसके पीछे-पीछे चली और पुकार कर कहा–धर्मिष्ठ राजपूत ? क्या तुममें इतना साहस नहीं है कि मुझको अपनी कृतज्ञता प्रकाश करने का समय दे सको। राजपूत वहां ही खड़ा हो गया, मुक्ता उसके निकट जा कर कहने लगी। तुमने दो बार हमारे ऊपर दया की। एक समय जंगल में भयानक शेर से मेरी प्राण रक्षा की और आज मेरे पिता की जान बचाई। इसका बदला तो मैं किसी प्रकार तुम्हें दे ही नहीं सकती। परन्तु यह अंगूठी, चिन्ह स्वरूप तुम मुझ से लेलो। मैं तुम्हारी ऋणी हूँ। तुम भाग्यमान हो। कौन जाने मैं कभी तुम्हारे का आ सकूं या नहीं। इसका निर्णय ईश्वर के आधीन है। यदि कभी युद्ध का समय हो तो इसकी सहायता से तुम मुझे अपनी सहायता के लिये बुला सकते हो।

राजपूत बिना कुछ विचार किये ही बड़े आदर के साथ हाथ बढ़ा कर अंगूठी लेली और सिर झुका कर कृतज्ञता प्रकट की। उसके इस व्यवहार ने मुक्ता के चित पर बड़ी भक्ति उत्पन्न कर दी।

राजपूत चल पड़ा इसी बीच अमरसिंह अपनी लड़की मुक्ता की आवाज सुनकर उस ओर आया इतने में वह तीसरा मनुष्य (राज कुमार) आँख से ओझल हो गया।

पिता और पुत्री ने स्मशान से वापस आ भवन में प्रवेश

किया। दीपक के प्रकाश में उसने तलवार के फल को देखा उस पर मोटे अक्षरों में लिखा हुआ था। "यह तलवार शेर का खून पीने वाली है" अमरसिंह ने उस तलवार को उसी समय हाथ से फेंक दिया। जब मुक्ता ने उन अक्षरों को पढ़ा तो समझ गई कि किस कारण यह तलवार उसके पिता को दी गई है इस प्रकार याद दिलाने से क्या प्रयोजन है परन्तु वह अपने पिता के भाव को पहचानती थी। एक ऊँची सांस लेती हुई चुपचाप बैठी रही।

केशरीसिंह आप अपनी जागीर ही में रहा करता था केवल कभी-कभी अपना चित्त बहलाने के लिये चित्तौड़ आ जाया करता था। इसका पुत्र युद्धसिंह बड़ा बुद्धिमान चतुर साहसी और धार्मिक था। राना उसको हृदय से चाहता था उसके वीरता और शौर्य्य की प्रशंसा किया करता था। उसने युद्धसिंह को प्रायः चिन्ता में व्याकुल पाया और अपने सरदार की दशा देख कभी कभी राना को चिन्ता हो जाया करती थी। वह चाहता था कि किसी प्रकार केशरी-सिंह और अमरसिंह का मनोमालिन्य दूर हो जाय। अवसर हाथ नहीं आता था कि उन लोगों के परिवार सम्बन्धी कार्यों में हस्तक्षेप करना राजधर्म के विरुद्ध था। इसी से चुप हो जाता था। इससे दिल में कई बार यह विचार पैदा हुआ कि मुक्ता का ब्याह युद्धवीर सिंह के साथ करा दिया जावे। तो शायद ऐसी स्थिति उत्पन्न हो कि दोनों

राजघरानों में प्रेम हो जावे। परन्तु केशरी और अमरसिंह की विचित्र दशा ने उसको कभी इस बात के कहने का अवसर न दिया। मुक्ता भी युद्धसिंह को चाहती थी और युद्धसिंह भी हृदय से उसका प्रेमी बन चुका था। जहाँ बड़ों में ऐसी शत्रुता ठनी हो वहाँ सन्तान सिवा चुप रहने के और क्या कर सकती है। वह चित्त ही चित्त में एक दूसरे से मिलने के लिये दुःखी थे परन्तु कुछ कर नहीं सकते थे।

एक समय की बात है कि केशरीसिंह जब अपने इलाके से वापस आया तो उसको पता लगा कि अमरसिंह उसके मारने के लिये पुरश्चरण करा रहा है और स्मशान में जाकर मन्त्र सिद्ध करना चाहता है तो यह सुनकर उसे बड़ा क्रोध आया वह क्रोध को न सँभाल सका। झट प्रयत्न कर किसी प्रकार अमरसिंह के घर में आग लगवा दी कि उसी में परिवार समेत वह जलकर भस्म हो जाय। जिस समय भवन में आग लगाई गई उस समय अमरसिंह और मुक्ता की नींद खुल गई। झट उन्होंने सबको जगा दिया किसी की जान तो न गई परन्तु सारी गृहस्थी जलकर खाक हो गई।

आग लगने के बाद अमरसिंह को बड़ा क्रोध आया और केशरीसिंह को दण्ड देने के लिये विचार करने लगा। उसी समय युद्धसिंह को बुलवा भेजा और कहने लगा—ऐ! युवक राठौर! यह क्या व्यवहार है कितने शोक का विषय

है कि मेरे रहते रहते राजधानी में यह अन्धेर हो रहा है और एक प्रतिष्ठित सरदार की यह दुर्गति की जा रही है। दीपक के तले अंधेरा! तू बता तेरी क्या सम्मति है और क्या करना चाहिये। युद्धसिंह ने उत्तर दिया—अन्न दाता जी! आप जानते हैं कि मैं कैसा विवश हूँ आप मुझसे क्या पूछते हैं? जो चित में आवे कीजिये, मेरा जीवन तथा धन सब आपका है। यह कह वहाँ से चलता हुआ। मुक्ता ने देखा कि केशरीसिंह ने उसके पिता के साथ ऐसा अत्याचार किया है जो मनुष्य कभी एक दूसरे के साथ नहीं कर सकता। वह उसी समय घोड़े पर सवार हुई। पिता अमरसिंह समझ गये कि यह इस समय क्या करना चाहती है इसलिये उसने अपने सब आदमियों को एकत्र किया। केशरीसिंह को एक-एक क्षण की हालत मालूम हुआ करती थी। वह तैयार होकर आ गया और अमरसिंह को जीता हुआ देखकर तलवार लेकर टूट पड़ा। अमरसिंह की ढाल कट कर गिर गई सिर पर बड़ी चोट आई और अधमरा होकर भूमि पर गिर पड़ा। यदि मुक्ता उसकी सहायता पर न आ गई होती तो उसी समय उसका अन्त हो गया होता। इसी बीच मुक्ता अपनी तलवार से केशरीसिंह पर झपटी। जिसे देखते ही केशरीसिंह सहम गया। मुक्ता ने केशरीसिंह के देखते ही देखते उसके सब परिवार को मिट्टी में मिला दिया। जिधर झुकी उधर साफ कर दिया। यह हाल देख केशरी

सिंह का साहस जाता रहा। उसने समझा कि यह कोई विचित्र देवी है। जो अमरसिंह की ओर से युद्ध कर रही है। उसके निकट के सब सम्बन्धी मर चुके थे वह मन में डरा कि कहीं ऐसा न हो कि युद्धसिंह के साथ देवी की मुठभेड़ हो जाय और वह बिना कारण मारा जाय।

यद्यपि मुक्ता की सहायता ने केशरीसिंह को इस लायक नहीं रक्खा कि वह अमरसिंह पर दूसरा वार करे, परन्तु अमरसिंह के मरने में कोई कसर न रही। साथियों ने उठाकर उसको एक स्थान पर लिटा दिया जहाँ वह लेटा हुआ प्राण निकलने की अन्तिम घड़ियाँ गिन रहा था। जिस समय मुक्ता ने अपने पिता की दशा देखी तो उसका खून उबल पड़ा। तलवार खींच केशरी सिंह के सन्मुख आई और बोली—रे दुष्ट! मैं कब से तुझे खोज रही हूँ। यह कहते हुए मुक्ता ने तलवार का वार कर दिया। केशरीसिंह भी चौकन्ना था चोट से बचकर अलग खड़ा हो गया। परन्तु मुक्ता फिर बिजली की तरह उस पर गिरी। केशरी सिंह सदैव बचने का साहस करता था। मुक्ता उस समय काल के समान थी।

उसकी चाल उस समय प्रचण्ड वायु के समान थी। उसकी तलवार बिजली को भी नीचा दिखाने वाली थी। जिस समय वह बोलती थी तो बादल की गर्ज की सी भयावनी आवाज होती थी। केशरीसिंह ने कितने ही युद्ध किये

थे कितने ही शूर वीरों से सामना हुआ था परन्तु आज तक ऐसे शूर से और चतुर शत्रु से पाला नहीं पड़ा था। उसकी ढाल चूर चूर हो गई वह आश्चर्य में था कि किस प्रकार अपनी रक्षा करें इतने में अन्तिम समय मुक्ता फिर उछली और उसकी तलवार केशरीसिंह के सिर पर गिरी (जैसे वृक्ष पर बिजली गिरती है) और उसने उसके दो टुकड़े कर दिये। जब केशरीसिंह भूमिपर गिरा था उस समय यह हाल सुनकर अमरसिंह बड़ा प्रसन्न हुआ। धन्य धन्य पुत्री मुक्ता! धन्य है! इस समय तू ने मेरा पूरा साथ दिया जो काम कि पुत्र नहीं कर सकते है वह तू ने पुत्री होकर किया अब मैं आनन्द से मरता हूँ, मुक्ता अपने पिता की ओर स्नेह दृष्टि से झुकी ही थी कि इसी बीच उसके पिता अमर सिंह के प्राण निकल गये।

अब राना को इस लड़ाई की सूचना मिली और साथ ही यह भी सुना कि दोनों शत्रु संसार से चल बसे। उसने केशरीसिंह की लाश उठा लेने की तैयारी की। और सेना को भेज अमरसिंह का भवन चारों ओर से घेर लिया। भवन धाँय धाँय जल रहा था इधर तो अग्नि अपना प्रचण्ड रूप धारण कर रही थी और दूसरी तरफ मुक्ता शत्रु का संहार करने में निमग्न थी। राजा की सेना को देखकर मुक्ता ने समझा कि शायद यह सेना शत्रु की मदद के लिये आई है। भवन द्वार पर बैठकर भ्रम से शत्रुओं पर बाण

वर्षा प्रारम्भ कर दी। यह हाल देख दूसरी ओर से भी बाण चलने लगे। अमरसिंह के साथी दिल खोलकर लड़े। मुक्ता सर से पैर तक खून से लथपथ थी। परन्तु एक क्षण को धनुष का बाण काम न बन्द हुआ। महाराजा की सेना कोई बढ़िया ज्वान चुनकर या युद्ध के निमित्त नहीं आई थी। मुक्ता की वीरता देख सबको बड़ा आश्चर्य हुआ, सभी भय से काँपने लगे। राना उसको जीवित देखकर चकित था क्योंकि वह समझे था कि मुक्ता अग्नि की ज्वाला से नहीं बचे। अन्त में बड़ी कठिनता से उसे विश्वास दिलाया गया कि कोई उससे लड़ने नहीं आया है। और न लड़ने का विचार है। तब कहीं जाकर मुक्ता ने कमान ढीली की और युद्ध बन्द हुआ। उस समय तक राज सेना के अधिक लोग मौत के मुख में जा चुके थे।

जब इस युद्ध का अन्त हो गया तो हुक्म दिया गया कि यहीं पर तीन चितायें तैयार हों। एक पर केशरीसिंह और दूसरे पर अमर सिंह का शव रक्खा गया। तीसरी चिता पर लकड़ियों का बहुत बड़ा ढेर लगाया गया। मुक्ता ने स्वयम् उन शवों को चिता पर रक्खा और आग लगा दी। इसके बाद तीसरी चिता में भी अग्नि देकर मुक्ता अन्य दो चिताओं की परिक्रमा करके फिर स्वयम् उस जलती हुई चिता में कूद पड़ी।

अभी मुक्ता की देह में आग लगने भी न पाई थी कि

युद्धसिंह अलग खड़ा यह दृश्य देखकर झट सन्मुख आ पहुँचा। जिसे देख मुक्ता चिता पर से बोली—वीर राजपूत! बहुत अच्छा हुआ कि तू युद्ध में मेरे सन्मुख नहीं आया। देख, यह मेरे पिता की चिता जल रही है साथ ही वह दूसरी ओर तेरे पिता की भी चिता जल रही है। तूने मेरी और मेरे प्राणों की रक्षा की थी तुम्हारे पिता ने मेरे पिता का प्राण हरा मैंने उसका बदला लिया। क्षात्र धर्म बड़ा कठिन है इसके सिवा दूसरा कोई उपाय न था। मैं तेरी ऋणी हूँ। और अन्त समय तक तुझको नहीं भूली हूँ और यदि मेरा संकल्प सत्य है तो अग्नि में पवित्र होकर फिर तुझसे मिलूँगी। यह कहकर मुक्ता ने युद्धसिंह को प्रणाम किया। उसी क्षण अग्नि की प्रचण्ड लपटें उसकी शरीर को दग्ध करने लगीं और थोड़ी ही देर में उसका शरीर जलकर भस्म हो गया।

जिस समय मुक्ता जल रही थी युद्धसिंहकी आँखोंमें आँसू बह रहे थे। जब सब कुछ हो गया और अग्नि सबको भस्म कर अपना कर्तव्य पालन कर चुकी। तो युद्धसिंह उछल कर झट अपने घोड़े पर सवार हो गया। देखते ही देखते वह वहाँ से गायब हो गया। इसके बाद फिर किसी ने उसको नहीं देखा कि वह कहाँ गया और अन्तिम परिणाम का क्या हुआ। युद्धसिंह का उस क्षण से फिर कुछ पता न चला।

अर्गल की रानी

अर्गल की रानी ।

सन् १२५० ई० की बात है कि जिस समय देहली के तख्त पर बादशाह नासिरुद्दीन (जो रजिया बेगम का भाई था) का राज्य था उस समय अर्गल की राजधानी एक हिन्दू क्षत्रिय गौतम के आधीन थी। अर्गल के राजा ने कई कारणों से बिगड़ कर बादशाह को कर देना बन्द कर दिया था। जब गौतम के विरोध की खबर बादशाह नासिरुद्दीन को मिली तो उसने

अवध के सूबेदार को आज्ञा दी कि गौतम को उचित दण्ड दिया जाय।

कितनों ही को भुनवा डाला चुनवा डाला दीवारों में।
अत्याचारों की हद होली यवनों के अत्याचारों से॥
गावों को गर्द मर्द डाला नगरों की नष्ट निशानी की।
क्या क्या बतलायें जो जो उन शैतानों ने शैतानी की॥

सूबेदार ने सब प्रकार से तंग किया। पर उससे कुछ न बन पड़ा औरंगशाही सेना मार खा भाग चली

एक दिन रानी अपनी सखियों के बीच बैठी हुई आपस में वार्तालाप कर रही थी। इतने में बात-चीत के सिलसिले में चन्द्र ग्रहण की चर्चा चल पड़ी, और रानी ने गंगा स्नान के लिये चलने की तैयारी कर दी। "मैं अवश्य गंगा स्नान को जाऊँगी इस समय गंगा स्नान से महा पुण्य होता है सारे पाप कट जाते हैं। धन सम्पति की वृद्धि होती है। पति व पुत्रों की आयु बढ़ती है यदि ऐसा न किया जायगा तो हमारे राज्य में विघ्न पड़ेगा मैं तो अवश्य जाऊँगी। चाहे कुछ भी होवे। सहेलियों ने बहुत समझाया कि नदी के तट पर मुसलमानी सेना पड़ी है यह समय ठीक नहीं है और इन झूठे अन्ध विश्वासों में पड़ना ठीक नहीं, कि सूर्य और चाँद ने किसी समय कर्जा लिया था गरीबी के कारण न दे सके। महाराज राहु और केतु जब इनके ऊपर हमला करते हैं तो ग्रहण पड़ते हैं। इस समय जो कुछ दान

दिया जाता है वह मोक्ष में उनका सहायक बनता है। वाह रे तुम्हारा भोलापन !

परन्तु रानी ने एक न मानी ! अपनी नई साड़ी पहिन ली और दो स्त्रियों को साथ ले गंगा की ओर रवाना हुई। गंगा तट पर जाने के लिये कई मील का अन्तर था। रानी निर्भय चली जा रही थी साथ में सिवा दो स्त्रियों के और कोई भी न था। ठीक समय पर रानी गंगा किनारे जा पहुँची। प्रेम पूर्व्वक सबों ने मिलकर गंगा स्नान किया और दान दिया। यद्यपि वह लुक छिपकर आई थी परन्तु गङ्गा तक उसके आने की बात छिपी न रह सकी। उसकी दान शीलता को देखकर लोगों ने समझ लिया कि यही अर्गल की रानी है। होते-होते यह खबर अवध के सूबेदार के कान तक पहुँची। जो हारकर बदला लेने की फिक्र में लग रहा था। वह इस खबर के सुनते ही बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने समझा कि अब रानी के पकड़ने का बहुत अच्छा मौक़ा हाथ आया। इस तरह पर राजा गौतम को नीचा दिखाने का अच्छा तरीका है।

स्नान, पूजा पाठ, तथा दान, के पश्चात् रानी घर को लौटी अभी मुश्किल से २, ३, मील आई होगी, देखा-कि चारों ओर हजारों मुसलमान रास्ता रोक कर खड़े हैं। इसे देखते ही रानी के होश ठिकाने हो गये। परन्तु उस वीर क्षत्राणी ने हिम्मत न छोड़ी। निर्भयता से मुसलमानों के सम्मुख आ

खड़ी हुई। और उच्च स्वर में कहा—"मुसलमानो! तुम्हारे लिये कितनी लज्जा की बात है कि एक स्त्री को कष्ट पहुँचाने के लिये मुँह बाये खड़े हो। क्या तुम हम तीन स्त्रियों से युद्ध करना चाहते हो। याद रक्खो! तुम अवध के नव्वाब के सिपाही हो तुम में मनुष्यों के से लक्षण होने चाहिये। उचित है कि तुम मेरा मार्ग छोड़ दो। यदि वीरता देखनी है तो कुल अगॅल की सेना का मुकाबिला करो।"

रमणी हम हैं पर, हाँ, रमता है रक्त रगों में सर्द नहीं।
सन्मुख मेरे ठहरे ऐसा तुम में कोई भी मर्द नहीं॥
टल जा, टल जा, खल जाँयगी क्षत्राणी हैं हम छेंक नहीं।
तेरी सारी सेना जितनी उतने को मेरा एक नहीं॥
तेरा ही जाल बिछाया ये हो जायगा जंजाल तुझे।
अबलायें महाकाल से भी हो जायेंगी विकराल तुझे॥

रानी की बातें सुनकर मुसलमानों का सरदार सहम गया। परन्तु फिर कहने लगा "कि नहीं-नहीं तुम्हें पकड़ कर हम हाकिम सूबा के पास ले जावेंगे। सरदार के मुख से यह वचन निकलते ही रानी ने अपनी तलवार खींच उसका सिर धड़ से उड़ा दिया। बाकी मुसलमान आश्चर्य के साथ उसकी तरफ देखने लगे। वह समझे थे कि रानी भाग कर कहीं नहीं जा सकती। तीन स्त्रियाँ इतनी सेना का क्या सामना करेंगी? रानी इस अभिप्राय को ताड़ गई। संयोग से वह जिस स्थान पर खड़ी थी वह स्थान एक ऊँचा

टीला था। उसने चारों ओर नजर घुमा कर देखा। पास ही में राजपूतों का एक झुंड खेत काट रहा था। उसमें दो सरदार अभयसिंह और निर्भयसिंह वैश जाति के क्षत्रिय वीर घूम रहे थे। रानी ने उच्च स्वर से उनसे कहा—"वीरो! जल्दी आओ! आर्य लोग स्त्री-बालक और गौ की प्रार्थना पर अपना प्राण दे देते हैं। मैं अर्गल की रानी हूँ मुसलमान बलात्कार पकड़ने की चेष्टा कर रहे हैं। यदि तुमको अपनी माँ बहिन प्रिय हैं या स्त्री जाति की प्रतिष्ठा का विचार है या अपनी पुत्री से प्रेम है तो शीघ्र ही मेरी ,सहायता करो। मैं इस उपकार के बदले अपनी लड़की तुम्हें ब्याह दूँगी। मैं तुमको शपथ देती हूँ कि शीघ्र आकर अपनी रानी के सतीत्व को बचाओ!

देखा उनने यवनों को कर हिन्दू-अबलाओं पर ओड़े।
खेत कटाना छोड़ इधर को ही अपने घोड़े मोड़े॥
निर्भयसिंह और अभयसिंहने मोड़े निज अश्व लगाम से वे।
हड़ड़ाकर आ धमके उनपर दोनों ही लक्ष्मण-राम से वे॥
प्राणों का मोह न रोक सका, भय भी न बना डरपोक सका।
उन वीरों के न हृदय तक में शंका अथवा आ-शोक सका॥
वे युवा न थे चिकने चुपड़े अब के बाबू—रंगीनों से।
आता था धर्म-हेतु उनको खेलना खेल संगीनों से॥

रानी के यह उत्तेजक शब्द खाली न गये। अभयसिंह और निर्भयसिंह बिजली की भांति झपटे और अपनी कटारों

से भीड़ को चीरते रानी के पास आगये। उनके साथियों ने भी उनका पूरा साथ दिया। राजपूतों ने स्त्रियों को बीच में लाकर मुसलमानों से युद्ध छेड़ दिया।

चमचम कर चमक उठी करमें छम छम करती करवाल चली।
रण रंग रँगी रणचंडी सी रानी कर आँखें लाल चली॥
दम के दम में दासी दल भी दौड़ा दम तोड़ दबंगी से।
भिड़कर भरपूर लिया लोहा यवनों की सेना जंगी से॥

इस प्रकार कोसों तक लड़ाई होने के पश्चात् रानी ने अपने आपको बचा लिया। लड़ाके राजपूतों ने एक २ फुट ज़मीन अपने गले काट २ कर तय की। जिस समय रानी की तलवार चमकती हुई चलती थी उस समय का दृश्य बड़ा हृदय विदारक था। इसके बचनों में जादू था। मुसलमान लोग इसी पशोपेश में थे कि क्या यह रानी इस वीरता से लड़ सकगी इस बीच अर्गल की सेना भी आ गई।

अर्गल में जब यह समाचार फैला कि रानी अकेली गंगा स्नान को गई है और लौटते समय मुसलमानों से घिर गई है तो वीर गौतम अपनी सेना साथ ले आ धमका। उस समय अवध की सेना की जो दुर्दशा हुई वह वर्णन से बाहर है। लाचार मुसलमान भाग निकले। गौतम, रानी को सकुशल पाकर बड़ा खुश हुआ। उसकी इच्छा थी कि मुसलमानों का पीछा करें। परन्तु रानी ने कहा—"हिजड़ों का पीछा करना व्यर्थ है। सब लोग राजमहल वापस आये।

अभयसिंह को पारितोषिक दिया गया तथापि रानी ने राजा की सम्मति से अपनी प्रतिज्ञाऽनुसार अपनी लड़की अभयसिंह को व्याह दी और राजा ने दहेज में लड़ाई की वह समस्त भूमि खंड दे दी।

सौ बार धन्य है धन्य-धन्य उन ललनाओं को लालों को।
सम्मान आन पर अड़ने, भिड़ने, लड़ने, मरने वालों को॥
इन वीरों की मर्यादा पर कायर बन धूल न डालो तुम।
हिन्दू कुल के गौरव होकर वीरों से सबक बनालो तुम॥
हर युवा अभय से निर्भय से मर्दाने होवें पानी के।
अबलायें उर में भाव भरें वीरा अर्गल की रानी के॥
सीखें यों सीख युवक युवती इनकी कर्तव्य कहानी से।
सारी बातें बन जावेंगी इतने में ही आसानी से॥

महारानी पद्मिनी

महारानी पद्मिनी।

महाराज लक्ष्मणसिंह जी जब पिता के राज्य सिंहासन पर सन् १२७५ ई० में बैठे। उस समय उनकी आयु कम थी अतएव राज्य का कार्य भार उनके काका भीमसिंह जी देखते थे। इन्हीं भीमसिंह को सीलोन के चौहान राजा हमीरसिंह की पुत्री ब्याही थी जिसका नाम पद्मिनी था।

पद्मिनी वास्तव में पद्मिनी थी। अत्यन्त सुन्दर और

रूपवती थी। उस समय दिल्ली के तख्त पर अत्याचारी अलाउद्दीन खिलजी राज्य करता था। जब उसने पद्मिनी की सुन्दरता का समाचार सुना तो उसकी छाती में मानों साँप लोट गया। उसके पाने की इच्छा से इसने मेवाड़ पर चढ़ाई करके चित्तौड़ को घेर लिया और कहला भेजा कि बिना पद्मिनी लिये अब दिल्ली वापस न जाऊंगा। परन्तु राजपूतों की मार के सम्मुख उसकी सेना ठहर न सकी निराश हो दिल्ली को वापस चली। मार्ग में फिर उसने पद्मिनी की सुन्दरता की चर्चा सुनी, अब क्या था उसने दृढ़ निश्चय कर लिया कि बिना पद्मिनी के जीवन व्यर्थ है। पिछली बार हार खाकर अलाउद्दीन खिलजी दिल्ली लौट गया था परन्तु उसके हृदय की 'पद्मिनी पाने की इच्छा' नहीं हटी थी। इसलिये सन् १२९६ ई० में अपना दल इकट्ठा करके फिर चित्तौड़ पर चढ़ाई कर दी।

जो राजपूत अपनी प्रतिष्ठा रखने के लिये केसरिया वस्त्र पहिन कर जौहर दिखाते थे और अपने मरने से पहिले अपनी स्त्रियों को चिता बना कर आग में जला देते थे वे राजपूत अपनी परम सुन्दरी रानी को मुसलमानों को दे दें? यह कब हो सकता था? अन्त में केवल शीशे में से पद्मिनी का मुख देख कर लौट जाना अलाउद्दीन ने स्वीकार किया। भीमसिंह ने अपने वीर पुरुषों के प्राण बचाने के लिये यह बात स्वीकार कर ली।

अलाउद्दीन खिलजी को राजपूतों की बात पर विश्वास था इसलिये थोड़े मनुष्यों के साथ उसने चित्तौड़ में प्रवेश किया और जो बात ठहराई गई थी तदनुसार पद्मिनी का मुख उसे दिखला दिया गया। इसके लिये अलाउद्दीन ने राजपूतों को बहुत कुछ धन्यवाद दिया परंतु अलाउद्दीन का दिल साफ न था। मुख से कुछ और कहता था और दिल में कुछ और ही धुन समा रही थी। जब उसने पद्मिनी का मुख देखा था तभी से उसकी व्याकुलता और बढ़ गई थी। भीमसिंह और थोड़े से राजपूत लोग अलाउद्दीन के साथ बात-चीत करते नीचे उतर आये। परन्तु बादशाह के मन में पाप की वासना जड़ जमा चुकी थी। बातों ही बातों में राजपूतों को अपने शिविर तक ले गया। जहाँ अवसर पाकर भीमसिंह को कैद कर लिया और कहला भेजा कि जब तक पद्मिनी मुझे न मिल जायगी तब तक भीमसिंह का छुटकारा नहीं हो सकता।

भोले और विश्वासी स्वभाव के राजपूतों ने, सन्मुख खड़े हुए कपटी शत्रुओं को अपने जैसे ही सरल हृदय का समझा जिससे उनका यह अनिष्ट हुआ। इस शोक समाचार के सुनते ही चित्तौड़ में घबराहट फैल गई अब क्या करना चाहिये, इन्हें कुछ इस समय न सूझ पड़ता था।

जब यह दुखद समाचार पद्मिनी के पास पहुँचा तो उसने काका 'गोरा' और उसके भतीजे 'बादल' को बुलाकर

पूछा—अब क्या उपाय करना चाहिये कि स्वामी बन्धन से मुक्त हों, और मेरी प्रतिष्ठा में बट्टा भी न आये। उन्होंने ऐसी युक्ति बतलायी कि जिससे पद्मिनी की प्रतिष्ठा और प्राण दोनों बचें। झट अलाउद्दीन को कहला भेजा कि हम अपने राज के संरक्षक को बचाने के लिये पद्मिनी को, आपको देने के लिये उद्यत हैं परन्तु पद्मिनी की प्रतिष्ठा और राजपूतों की रीति व्यवहार बिगड़ने न देने के लिये आपको कुछ नियम स्वीकार करने होंगे। प्रथम तो तुम अपने घेरे उठा लो तब ही हम पद्मिनी को देंगे। फिर पद्मिनी के साथ कुछ दासियाँ छावनी तक बिदा करने जायेंगी और कितनी तो उसकी निज की दासियाँ हैं जो दिल्ली तक उसके साथ जाना चाहती हैं। इससे उनको जानेकी आज्ञा मिलनी चाहिये और उनकी मान प्रतिष्ठा भङ्ग न होने देनेका वचन मिलना चाहिये।

राजपूतों के यहाँ नियम है कि स्त्रियाँ किसी को मुंह नहीं दिखलातीं अतएव इसी प्रकार तुम्हारे यहाँ भी होना चाहिये। पद्मिनी ऐसी रूपवती स्त्री के मुख को देखने को तुम्हारे सर्दार लोग बड़े आतुर होंगे, इससे वे उसका मुख देखने दौड़ेंगे। ऐसी दशा में, उसका तो क्या उसकी दासियों तक का मुख देखने को किसी को आज्ञा न होनी चाहिये। यदि यह सब बातें तुम्हें स्वीकार हों तो घेरा उठाकर हमको खबर देना। बस हम पद्मिनी को उसकी दासियों के साथ तुम्हारे पास भेज देंगे।

भला पद्मिनी पर मोहित हुआ अलाउद्दीन खिलजी इस एक सुगम नियम को क्यों न स्वीकार करता। उसे तो पद्मिनी की चाह थी। चाहे जैसी भी कठिन शर्तें हों सब स्वीकार करता। अलाउद्दीन जैसे छली कपटी और धूर्त मनुष्य के लिये जैसा चाहिये वैसा गोरा और बादल भी मिल गये। अलाउद्दीन ने सब बातें स्वीकार करके घेरा उठवा दिया इतने में चित्तौड़ से एक के पीछे एक इसी प्रकार सात सौ पालकियाँ निकलीं। प्रत्येक में एक एक वीर लड़ाका राजपूत शस्त्र सहित बिठाला दिया गया और उन पालकियों में से प्रत्येक के उठाने के लिये ६-६ वीर शस्त्रधारी राजपूत पालकी उठाने वालों के वेश में थे। सब के सब बादशाही शिविर के पास आये और एक बड़े तम्बू के भीतर जिसके चारों ओर कनात लगी थी, सब पालकियाँ उतारी गईं।

अलाउद्दीन ने भीमसिंह को आध घण्टे के लिये पद्मिनी से अन्तिम मुलाकात की आज्ञा दी। भीमसिंह तम्बू में आये तो उसको एक पालकी में बिठलाया गया और उनके साथ कुछ पालकियाँ पीछे २ चलीं। मार्ग में एक शीघ्रगामी घोड़ा तैयार रक्खा गया था, उस पर सवार हो भीमसिंह सकुशल चित्तौड़ पहुँच गये। इधर बादशाह अपने मनमें बड़ा प्रसन्न था, कि ऐसी अद्वितीय सुन्दरी मुझको मिल गयी। वह कामातुर बना प्रतीक्षा कर रहा था कि कब आध घण्टा बीते और कब पद्मिनी से भेंट हो।

अलाउद्दीन को क्या मालूम कि भीमसिंह चित्तौड़गढ़ पहुँच गये। वह तो जानता था कि भीमसिंह पद्मिनी से बात-चीत कर रहे हैं, और अधिक देर तक बात-चीत करना भी उचित नहीं। वह उठा और तम्बू में आया परन्तु वहाँ तो भीमसिंह और पद्मिनी दोनों में से कोई न था। पालकियों में से एक के पीछे एक वीर क्षत्री निकल पड़े। अलाउद्दीन भी कच्चा न था उसके यवन वीर उसकी रक्षा के लिये तैयार थे। राजपूतों ने कपट किया? यह देख उसने तुरन्त ही भीमसिंह के पीछे सैनिक भेजे परन्तु बादशाही छावनी में आये हुये राजपूतों ने उन्हें आगे बढ़ने से रोक दिया। एक एक वीर मरते दम तक वीरता से लड़ा, परन्तु बहुत बड़ी सेना के सामने उनका क्या बसचल सकता था। मुसलमानों ने चित्तौड़ के पहिले द्वार के आगे राजपूतों को पकड़ लिया, परन्तु भीमसिंह तो उससे पहिले ही ठिकाने पहुँच चुके थे। द्वार के आगे जो राजपूत थे उनके नायक गोरा और बादल थे। उन्होंने मुसलमानों को ऐसा त्रास दिया कि अलाउद्दीन को अपनी इच्छापूर्ण होने में शंका हो गई और उसे थोड़ी देर के लिये अपने चित्तसे पद्मिनी को भुला देना पड़ा। भीमसिंह के छुड़ाने के लिये बहुत से सिसौदियाँ वीर मारे गये बादल की अवस्था १२ वर्षकी थी, परन्तु उसने अपनी वीरता से लोगों को चकित कर दिया।बादल घायल हुआ और गोरा मारा गया।

जब बादल वापस घर पहुँचा तो गोरा की स्त्री (बादल की काकी) ने उससे पूछा कि ऐ प्यारे 'बादल' तेरे काका ने कैसी लड़ाई की यह मुझ से कहो, कि जिससे मरने के पहिले मेरा मन शांति पावे। बादल ने वीरता से उत्तर दिया कि काकीजी काका की वीरता का वर्णन करने के लिये और अपने घावों का वर्णन करने के लिये कोई शत्रु बाकी नहीं रक्खा। यह सुनकर वह अति प्रसन्न हुई और बोली कि बस! मुझे यही सुनना था। अब जो मेरे जाने में देरी होगी तो स्वामी अप्रसन्न होंगे। इतना कहकर अपने स्वामी की जलती हुई चिता में कूद कर सती हो गई।

रामनाथ रत्न 'चारण' ने राजस्थान के इतिहास में लिखा है कि—"सिसोदियों ने गढ़ में बैठकर लड़ाई की" यह उनकी बड़ी भूल हुई और उनके बाद महाराना प्रताप तक बराबर यही भूल होती गई। यही कारण है कि अकसर मुसलमान लोग विजयी होते गये, क्योंकि गढ़ में बैठकर लड़ने से राजपूत लोग घिर जाते थे। देश शत्रुओं के हस्तगत हो जाता था। प्रजा का रक्षक कोई न रह जाता था। शत्रुओं को सब प्रकार की सुविधा रहती थी और सदैव इसी ताक में रहते थे कि बाहर से गढ़ के अन्दर अन्न व जल न पहुँचने पावे, जिससे गढ़ के अन्दर के अन्न जल खतम हो जाने पर दो तीन दिन भूखों मर कर विवश क्षत्रियों को बाहर निकल कर लड़ना पड़ता था।

उस समय शत्रु तो हर प्रकार से तैयार रहता था परन्तु क्षत्रिय दो २ तीन दिन के भूखे। यद्यपि वह लोग वीरता से लड़ते थे परन्तु अन्त को सब के सब मारे जाते थे। यदि कुछ बच रहते थे तो आपस में कट मरते थे। क्योंकि ऐसे मौकों पर प्रायः सभी क्षत्रिय अपनी-अपनी स्त्रियों को जलाकर बाहर लड़ने को निकलते थे। फिर उनको इस संसार में रहना किसी प्रकार भी स्वीकार नहीं होता था। इसी कारण राजस्थान के सब राजा भी दिल्ली के बादशाहों के सन्मुख पराजित हुए। मेवाड़ाधिपति महाराना प्रताप ने इस प्रकार युद्ध करना उचित न समझा, जिसका फल यह हुआ कि अकबर जैसा प्रबल बादशाह भी उन्हें अपने वश में न कर सका।

लगभग छः महीने तक राजपूत असीम वीरता के साथ युद्ध करते रहे, परन्तु रानाजी को यह निश्चय हो गया था कि अब चित्तौड़ के साथ सब सिसौदियों का नाश होनेवाला है। लगातार अधिक समय तक लड़ते रहने से उनकी सेना भी बहुत घट गई थी। अन्त को अपनी प्रतिष्ठा बचाने के लिये उन्होंने केसरिया बाना * पहिनना पसंद किया।

जिस समय राजपूत स्त्रियों ने 'केसरिया बाना' की खबर सुनी तो अपने २ पतियों के साथ प्राणान्त करने पर उद्यत होगईं। उन्होंने कहा—हम भी केसरिया वस्त्र धारण कर तुम्हारे साथ युद्ध क्षेत्र में चलेंगी और शत्रुओं का संहार करने में तुम्हारी संगिनी बनेंगी। अपने आप मरने से तो शत्रुओं

को मारते २ मरना हमें अधिक पसंद है। मुसलमानों को भी हमारे हाथ का स्वाद चखने दो वह भी जान लें कि ऐसी स्त्रियों की कोख में जन्म लेने वाले शेर कभी भी सिर झुकाने वाले नहीं हैं, और इसीसे वह फिर कभी चित्तौड़ पर चढ़ाई न करेंगे परन्तु यह बात राजपूतों को उचित न मालूम हुई कि यदि लड़ने को जावें और कोई औरत जीवत ही मुसलमानों के हाथ में या पद्मिनी ही शत्रु के पंजे में फंस जाय तो सब उद्योग व्यर्थ हो जाँय, अतएव ऐसा करना ठीक नहीं। फिर उनके प्राणान्त का अन्य मार्ग यही था कि वे स्त्रियाँ चिता में अग्नि लगा जल मरने को तैयार हुईं। राजपूतों को यह विचार अच्छा लगा एक बड़े घर में चिता बनाई गई और जब क्षत्राणियाँ उस पर बैठ गईं तो आग लगा दी गई और घर के साथ भस्म हो गईं। आग लगते ही उसका धुआँ आकाश में पहुँचा और उसका प्रकाश अलाउद्दीन की छावनी में पहुँचा। राजपूत केसरिया वस्त्र पहन नंगी तलवारें हाथों में ले सिंह की सी गर्जना कर खुला द्वार छोड़ "एक लिंग की जय रामजी है तेरा सहारा" कहते हुये मुसलमानों पर धावा बोल दिया, और अलौकिक वीरता

---

* जब राजपूत निराश होकर मरने मारने को तैयार होते थे तो अपनी २ स्त्रियों को चिता पर जीवत जलाकर केसरिया बाना पहिन रण क्षेत्र में जाते थे और युद्ध करते २ स्वर्ग सिधारते थे।

प्रकाशित करते हुये उनमें से प्रत्येक को मारा। भीमसिंह भी वीरता पूर्वक लड़कर मुसलमानों के हाथ से मारे गये, और चित्तौड़ गढ़ में घुसने के लिये मुसलमानों को कोई रुकावट न रह गई। वे सुगमता से घुस गये, परन्तु जिस इरादे से अलाउद्दीन ने अपने हजारों वीर खोये और राजपूतों का खून बहाया वह न पूरा हो सका। जब पद्मिनी को प्राप्त करने की लालसा से अन्दर गया तो उसके आश्चर्य की सीमा न रही उसे वहाँ पद्मिनी की मुट्ठी भर राख भी न मिल सकी।

जब अलाउद्दीन को वैर का बदला लेने के लिये चित्तौड़ में कोई सजीव प्राणी न मिला तो क्रोधित हो महल और देव-मंदिर तुड़वा दिये, और वहाँ की प्राचीन कारीगरी को नष्ट भ्रष्ट कर दिया, और अंत को चित्तौड़ के टूटे फूटे खंडहरों को अपने एक अधिकारी के सिपुर्द कर हाथ मलता हाय हाय कर वह पापी दिल्ली लौट आया। पद्मिनी का पवित्र जीवन अब तक भी भारतीय स्त्रियों को उत्तम आदर्श का उपदेश दिया करता है।

महारानी लक्ष्मीबाई।

महारानी लक्ष्मीबाई।

भारतवर्ष के स्कूलों और कालिजों की ऐतिहासिक पाठ्य पुस्तकों में भारतीय देशभक्त और वीरों के पराक्रम और कीर्ति पर कलङ्क लगाया गया है। क्लाइव, वारन हेस्टिंग्ज़, वैलेसली और डलहौजी के प्रपंच, कपट और जालसाज़ी को युक्तियुक्त और हितकर कहा गया है। इतिहास की वर्त्तमान पाठ्य पुस्तकें भारत

में राष्ट्रीय भावों और मान मर्यादा को स्थापित रखने के लिए नहीं हैं। वे ब्रिटिश साम्राज्य के चङ्गुल को विस्तृत और दृढ़ करने के लिए हैं। गोरे सिपाहियों की विरुदावली में मार्सडन, लेनपूल और लायल ने सफ़े के सफ़े रंग दिये है। शिवाजी और पृथ्वीराज को लुटेरा, डाकू, अनधिकार चेष्टा करने वाला, साधारण सिपाही कहकर ही टाल दिया है। मध्यकालीन इतिहास में वीर क्षत्राणियों और राजपूतों के कारनामों का नाम तक नहीं, और यदि है भी, तो उनके ऐसे अत्याचारों का, जो उन्होंने कभी नहीं किये और साथ ही उसी स्थान पर यह टीका-टिप्पणी भी कर दी गई है कि ऐसे अमानुषिक अत्याचार ब्रिटिश छत्र—छाया में कभी नहीं होते।

जब हिन्दू विद्यार्थी औरङ्गजेब का वर्णन पढ़ता है, तो वह औरङ्गज़ेब और मुग़ल राजाओं से घृणा करने लगता है और यही भाव उस मुसलमान विद्यार्थी का होता है, जो शिवाजी, प्रताप और रणजीतसिंह का अध्ययन करता है। एक प्रकार से ये पुस्तकें भारतीय वीरों के विरुद्ध घृणा उत्पन्न करती हैं और हिन्दू-मुसलमानों में द्वेष उत्पन्न करती हैं। इतिहास में यह नहीं दर्शाया गया कि औरङ्ग़ज़ेब के समय हिन्दू वीर थे।

अंग्रेज़ लेखकों ने भारतीय इतिहास की पाठ्य पुस्तकों में उन रत्नों का ज़िक्र तक नहीं किया, जिन्होंने भारतमाता का श्रीमुख उज्ज्वल किया और जिनका कीर्तन, कोमल-हृदयी

बालकों को उत्कट देशभक्त, गैरीबाल्डी और नैपोलियन बना सकता है। ऐसे वीरों का वर्णन हमारे-पाँच-प्रति सैकड़ा-ग्रेजुएटों तक को मालूम नहीं है?

ऐसे ही अनमोल रत्नों में, भारतीय नवयुवकों की जर्जरित हड्डियों में खून डालने वालों में, प्रातःस्मरणीया वीरांगणा झाँसी की महारानी लक्ष्मीबाई हैं। अंग्रेज लेखकों ने उनकी कीर्त्ति-ज्योति को व्यक्त नहीं किया, क्योंकि उन्होंने स्वदेश और स्वधर्मार्थ चण्डी—रूप धारण करके अपनी भयङ्कर तलवार की धार से अनेक युद्धप्रवीण अंग्रेज़ रणबाँकुरों का मान मर्दन किया और अपने मुट्ठी भर सिपाहियों से अस्त्र—शस्त्र—सुसज्जित अंग्रेजी सेना को कई बार गाजर-मूली की भाँति काट डाला। समय बहुत नहीं बीता; सम्भव है अब भी दो—चार ऐसे पार्थिव शरीरधारी विद्यमान हों, जिन्होंने महारानी के दिव्य दर्शन किये हों। महारानी ने सिपाही—विद्रोह में अंग्रेज़ों के विरुद्ध अपनी कमर से लटकती तलवार खींची थी। वह अपने लिए नहीं, वरन् भारतमाता से करुण—क्रन्दन से विह्वल होकर, उसको दासता के पाश (बन्धन) से मुक्त करने के लिए। यह भारतवासियों का दुर्भाग्य और उनके लिए लज्जा की बात भी है। कि वे महारानी के जीवन से अनभिज्ञ हैं। अपने देशवासियों और विशेष कर नवयुवकों के हित के लिए वीर रस की मूर्ति, शत्रुसंहारिणी देवी, चण्डी-स्वरूपा, लक्ष्मीबाई की, निष्पक्ष

रूप से, सूक्ष्म जीवनी दी जाती है। आशा है, नवयुवक उससे लाभ उठावेंगे।

महारानी के पिता मोरोपन्त तांबे महाराष्ट्र ब्राह्मण थे। जब सन् १८१८ ई० में अन्तिम पेशवा द्वितीय बाजीराव पद-च्युत करके बिठूर भेजे गये, तो उनके भाई चिमणाजी आपा काशी चले गये। मोरोपन्त भी आपा जी के साथ काशी चले गये। उनकी स्त्री भागीरथी बाई बड़ी सुशीला पति-भक्ति थीं। काशीधाम में पतित-पावनी भागीरथी के किनारे भागीरथी बाई के कार्तिक कृष्णा १४ संवत् १८६१ वि० तदनु-सार ता० १६ नवम्बर सन् १८३५ ई० को महारानी लक्ष्मीबाई का जन्म हुआ। लग्न देखकर विख्यात ज्योतिषियों ने भवि-ष्यवाणी की कि कन्या अद्भुत तेजस्विनी और रानी होगी। कन्या का नाम मनूबाई रखा गया। विवाह—उपरान्त मनूबाई ही लक्ष्मीबाई कहलाईं। मनूबाई के जन्म के थोड़े दिनों पश्चात् चिमणा जी आपा की मृत्यु हो गई। अब मोरोपन्त का काशी में कोई सहारा न रहा। अतः द्वितीय बाजीराव के बुलाये जाने पर वे बिठूर चले गये। उन पर पेशवा की बड़ी कृपा रहती थी। अभी बालिका मनूबाई तीन—चार वर्ष ही की थी कि उसकी माता चल बसी। मनूबाई अत्यन्त रूपवती थी, अतः पेशवा बाजीराव उसे छबीली कहा करते थे।

पेशवा बाजीराव के दत्तक पुत्र नाना साहब के साथ

साथ मनूबाई का पठन—पाठन और खेल कूद हुआ। जिन जिन कामों को नाना साहब करते, मनूबाई भी वही करती। यदि वे शिकार को जाते, तो वह भी शिकार खेलने जाती। यदि नाना साहब तलवार चलाना सीखते, तो वह भी तलवार चलाना सीखती। कहा जाता है एक बार मनूबाई ने, नाना साहब को हाथी पर चढ़ कर घूमने को जाते देख, हाथी पर चढ़ने की हठ की; परन्तु मोरोपन्त ने क्रुद्ध होकर कहा, "क्यों वृथा हठ करती है, तेरे भाग्य में क्या हाथी रखा है ?" बालिका मनूबाई ने तुरन्त उत्तर दिया, "मेरे भाग्य में एक छोड़ कर दस हाथी बदे हैं !" अस्तु, उसे बाजीराव पेशवा के दत्तक पुत्र नाना साहब और राव साहब के साथ शिक्षा दी गई और थोड़े ही समय में उसने अपनी प्रारम्भिक शिक्षा समाप्त करके अपना पूर्ण ध्यान घोड़े की सवारी, शिकार, तलवार चलाने और युद्ध—कला के सीखने में लगाया। कहाँ मनूबाई की शिक्षा और कहाँ पर्दे में सड़ाने की आजकल की प्रथा ! स्त्रियाँ ही क्यों, आजकल के कितने ही मूछधारी स्त्रियों तक को वह नहीं मालूम कि फ़ायर कैसे करते हैं !

सन् १८४२ ई० में मनूबाई का विवाह झाँसी के राजा गंगाधर राव से हुआ और वे लक्ष्मीबाई कहलाईं। मोरोपन्त भी झांसी दरबार के सरदार बनाये गये। महाराज गंगाधर राव बड़े चतुर और कार्यकुशल शासक थे। थोड़े ही दिनों

में, उन्होंने राज्य का ऋण चुका दिया और प्रजा-सुखकारी सुधार किये। झांसी की प्रजा महाराज की अनन्य भक्त थी। महारानी लक्ष्मी बाई के आगमन से मानो स्वयम् राजलक्ष्मी ही झांसी में आ गई। सन् १८५१ ई० में महारानी के पुत्र उत्पन्न हुआ। महाराज गंगाधरराव के आनन्द की सीमा न रही। पर दो तीन ही मास में महाराज को पुत्र-वियोग सहना पड़ा। पुत्र-वियोग का धक्का महाराज को ऐसा लगा कि उनका स्वास्थ्य बिगड़ने लगा और अक्तूबर सन् १८५३ से उनकी दशा शोचनीय होने लगी। जब उनकी दशा दिनों दिन बिगड़ती ही गई, तब उन्होंने बुन्देलखण्ड के पोलिटिकल एजेण्ट मेजर एलिस और कप्तान मार्टिन की उपस्थिति में अपने घराने के एक पाँच-वर्षीय बालक को धर्मानुकूल गोद लिया और दत्तक पुत्र का नाम दामोदर राव-गंगाधर राव रखा गया। सन १८१७ ई० की झाँसी-सन्धि से ब्रिटिश सरकार दत्तक पुत्र स्वीकार करने को बाधित थी, इसलिए महाराज गंगाधर राव को किसी बात की चिन्ता नहीं थी। उन्होंने महारानी लक्ष्मीबाई को भी धैर्य बँधाया कि ब्रिटिश सरकार की कृपा से उन्हें कोई कष्ट न होगा। ता० २१ नवम्बर सन् १८५३ ई० को महाराज की दशा असाध्य हो गई और उनके प्राण पखेरू उड़ गये। महारानी लक्ष्मी-बाई पर वज्राघात हुआ। इस छोटी सी अठारह वर्ष की आयु में एक हिन्दू ललना पर कठोर वैधव्य का आघात!

पति-वियोग-शोक से महारानी की बुरी दशा हो गई। महाराज गंगाधर राव की अन्त्येष्टि-क्रिया नियम-पूर्वक की गई और दिसम्बर सन् १८५३ ई० में महारानी ने एक खरीता ब्रिटिश सरकार की सेवा में भेजा। इसका कुछ उत्तर न पाने पर उन्होंने एक दूसरा खरीता फ़रवरी सन् १८५४ ई० में भेजा। परन्तु लार्ड डलहौज़ी की लोलुपता और स्वार्थ-परता ने ब्रिटिश सरकार द्वारा दिये गये वचनों पर पानी फेर दिया।

लार्ड डलहौज़ी की आज्ञा हुई कि झाँसी राज्य ब्रिटिश राज्य में मिला लिया जाय। महारानी को पाँच हज़ार रुपया मासिक पेन्शन दी जाय और वे किले को खाली करके अपने महल में रहें। उनकी सेना तोड़ दी जाय और उनके नौकर घटा दिये जायँ। यह समाचार सुन कर महारानी मूर्छित हो गईं। पर वे क्या करतीं? विवश होकर उन्होंने पेन्शन स्वीकार कर ली। लार्ड डलहौज़ी ने महारानी के प्रति घोर अन्याय किया। इस स्थान पर झाँसी के प्रति उसकी नीति की आलोचना नहीं की जाती, क्योंकि यह बात निर्विवाद रूप से साबित हो गई है कि, डलहौज़ी ने महारानी के प्रति घोर अन्याय किया। लार्ड डलहौज़ी सम्पूर्ण भारत पर ब्रिटिश जाल बड़ी तीव्रता से फैलाता जाता था और झाँसी का—यदि आर्थिक नहीं—राजनैतिक महत्व था। मध्यभारत और उत्तरी भारत के बीच, आगरा

और सागर के बीच, झाँसी एक स्थान था और है, जहाँ से समय पड़ने पर सिंधिया और अन्य राजाओं को सरलता से परास्त किया जा सकता था। इन्हीं कारणों से प्रेरित हो कर दत्तक—पुत्र—निषेध—नीति(The doctrine of Lapse) के बहाने झाँसी को भी उसने रुधिर वर्ण कर दिया। झाँसी राज्य ब्रिटिश राज्य में मिला दिया गया। महारानी ने एक बङ्गाली वकील और एक यूरोपियन को साठ हज़ार रुपया देकर इङ्गलैण्ड को भेजा, ताकि कोर्ट आफ़ डाइरेक्टर्स उसके साथ न्याय करे; परन्तु उन धूर्त्तों का कुछ पता न चला और वे लौटे तक नहीं! अगस्त सन् १८५४ ई० में डाइरेक्टरों ने भी झाँसी को ब्रिटिश शासन में मिलाने की स्वीकृत दे दी। महारानी मन मसोस कर रह गईं और अपने दुःख-मय जीवन—नाटक के अन्तिम दिवस कठिनाई से काटने लगीं। उनका समय ईश्वर—प्रार्थना और पाठ—पूजा में ही बीतता था। वे एक प्रकार से सन्यासिनी की भाँति रहने लगीं। पति—पुत्र—वियोग से दग्ध महारानी नित्य प्रातः-काल ब्राह्म मुहूर्त में चार बजे उठतीं और स्नान कर आठ बजे तक पाठ—पूजन करतीं; और फिर महल के भीतर ही अश्वारूढ़ हो व्यायाम करतीं और ग्यारह बजे स्नान कर भोजन करतीं। कुछ आराम करके सायङ्काल के तीन बजे तक ग्यारह सौ रामनाम की गोलियाँ अपने हाथ से बनाकर मछलियों को खिलातीं। सन्ध्या के आठ बजे तक पुराणादि

ग्रन्थों की कथा सुनतीं और रात्रि को फिर तीसरी बार स्नान करतीं और ईश्वर प्रार्थना के उपरान्त वे सोतीं थीं। उनके पिता मोरोपन्त घर का प्रबन्ध करते थे। इस प्रकार महारानी अपने जीवन के दिन बिताने लगीं; उधर ब्रिटिश सरकार के प्रति लोगों की घृणा उग्र रूप धारण कर रही थी। समय पाकर असन्तोष–ज्वाला सुलगी और मई सन् १८५७ में वह धधकने लगी। बलवा हुआ और उत्तरी भारत में मुख्य नगरों में बलवाइयों ने अपना आधिपत्य जमाया। बलवे की छूत झाँसी में भी पहुँची। जब अँग्रेजों को कुछ आशङ्का हुई, तो झाँसी के अंग्रेजों ने महारानी से सहायता माँगी। महारानी के पास अस्त्र—शस्त्र कुछ भी नहीं थे, फिर भी उन्होंने अंग्रेज स्त्रियों को शरण दी और किले में खाना भी भिजवाया और अपने १०० आदमी उनकी सहायतार्थ भी भेजे एवम् उनको अनेक प्रकार से सलाह दी। बलवाई ज़ोर पकड़ते गये और झाँसी के दुर्ग को घेर लिया और अन्त में अँग्रेज़ों ने जीवन–रक्षा का वचन दिये जाने पर आत्म—समर्पण किया। बलवाइयों ने उनका क्रूरता से वध किया। उन्होंने महारानी के महल को भी घेर लिया और तीन लाख रुपये माँगे। महारानी ने उन्हें बहुत कुछ समझाया, पर उन्होंने एक न मानी और महारानी को मारने की धमकी दी और वे महल में आग लगाने लगे। महारानी ने बाध्य होकर उन्हें अपने गहने देकर टाला। झाँसी के अंग्रेज़ी

शासन का भी अन्त हो गया और बलवाइयों का आतङ्क चारों ओर छा गया। ऐसी अवस्था में महारानी ने यह उचित समझा कि वे झाँसी के बलवे की सूचना सागर के कमिश्नर को दें। इसलिए महारानी ने पत्र द्वारा कमिश्नर को बलवे की सूचना दे दी और सचेत कर दिया। फल स्वरूप अंग्रेज़ों ने सागर में बलवा नहीं होने दिया और जब तक झाँसी में कोई अंग्रेज़ कर्मचारी न आ सके, तब तक के लिए झाँसी का शासन महारानी के सुपुर्द कर दिया। महारानी के पास इस समय कोई निपुण नीतिज्ञ या योद्धा न था। उनके पुराने कर्मचारी पहले ही निकाल दिये गये थे। फिर भी उन्होंने आश्चर्य जनक प्रबन्ध आरम्भ किया। इसी समय सदाशिव-राव ने झाँसी पर आक्रमण किया। महारानी ने उसे परास्त कर दिया। महारानी ने सदाशिव को परास्त किया; पर इतने ही में ओरछा के दीवान नत्थे ख़ाँ ने बीस हज़ार सिपा-हियों के साथ झाँसी पर आक्रमण कर दिया। नत्थे ख़ाँ ने महारानी को बहुत प्रलोभन दिये, परन्तु महारानी राज़ी नहीं हुईं। उनके पास इने गिने सिपाही थे। उन्होंने मध्य भारत के पोलिटिकल एजेण्ट को सहायता के लिए लिखा, परंतु पत्र ले जाने वाला नत्थे ख़ाँ के द्वारा मरवा डाला गया। नत्थे ख़ाँ के बीस हज़ार जवान झाँसी की ओर बढ़ आये। ऐसे विपत्ति—काल में उन्होंने ब्रिटिश सर-कार की सेवा के लिए स्वतन्त्र रूप से उद्योग करने की ठानी।

क़िले में एक सभा की गई। सभा में सभी लोगों ने एक स्वर से कहा कि शत्रु की शक्ति महान है; इसलिए शत्रु की आज्ञा मानने में ही हित है। यह सुनकर महारानी को बड़ा क्षोभ हुआ। उन्होंने तेजस्वी और भावप्रद शब्दों में उत्तर दिया—धिक्कार है तुम्हारे मनुष्य जीवन को! मैं तो स्त्री जाति हूँ, तो भी अपने साहस और धैर्य—बल पर अपने कर्त्तव्य मार्ग का परित्याग करना नहीं चाहती और तुम पुरुष होकर ऐसे कायरता के वचन निकालते हो! इस असार संसार में एक दिन सभी को मरना है। यदि हम अपने राजा के काम आवें और इस कर्त्तव्य कर्म में हमारा मानवी जीवन भी समाप्त हो जाय, तो क्या हम इस लोक में और परलोक में यशस्वी न होंगे? मेरी तो इच्छा कभी भी युद्ध से विमुख होने की नहीं है। पलासी—युद्ध के समय क्लाइव ने भी, जब उस के शत्रु का जनरल उससे मिल गया था, युद्ध की ठानी थी। अंग्रेज लेखकों ने क्लाइव के इस साहस की प्रशंसा में तिल का ताड़ कर दिया है। महारानी के इस साहस और वीरतापूर्ण वक्तव्य का क्या क्लाइव के शब्द मुक़ाबिला कर सकते हैं? महारानी का भाषण सुनकर लोग बड़े लज्जित हुए और युद्ध की तय्यारी करने लगे। क़िले बुर्ज ठीक किये गये और स्वयम् महारानी ने पुरुष वेष धारण करके अंग्रेज़ी झण्डा (Union Jack) मुख्य बुर्ज पर लगाया। महारानी विद्युत की भांति घूमकर

लोगों को प्रोत्साहित करती थीं। नत्थे ख़ाँ ने प्रबल आक्रमण किया परन्तु महारानी के सङ्गठन ने उसकी एक न चलने दी और भयङ्कर मार से शत्रुओं की लोथें बिछ गईं। नत्थे ख़ाँ अपनी जान लेकर भागा! अब किसी और का झांसी पर आक्रमण करने का साहस न हुआ। दस महीने लों महारानी ने झांसी में अंग्रेज़ों के लिये राज्य किया। महारानी की कृपा से जब झांसी में यूनियन जैक फहरा रहा था, तब भारत के अन्य स्थानों में विद्रोहाग्नि इतनी बढ़ी कि नानासाहब और तांतिया टोपी ने कालपी, चरखारी और कानपुर को हस्तगत कर लिया। महारानी के शत्रुओं ने अफ़वाह उड़ा दी कि महारानी अंग्रेज़ों के विरुद्ध है। अंग्रेज़ों ने भी इस लोकापवाद पर सहसा विश्वास कर लिया। महारानी को जब ज्ञात हुआ कि लोग उनके विरुद्ध सरकार के कान भर रहे हैं, तो उन्होंने भ्रम दूर करने के लिये आगरा के कमिश्नर के पास एक ख़रीता भेजा परन्तु उसका कुछ विचार न किया गया और सर ह्यू रोज़ एक बड़ी सेना के साथ झांसी पर चढ़ आये। सर ह्यू रोज़ ने महारानी को आज्ञा भेजी कि वे क़िला ख़ाली कर दें और गोला बारूद अंग्रेज़ों के सुपुर्द करके स्वयं हाज़िर हों। महारानी को यह बात बुरी लगी ब्रिटिश राज्य के प्रति उन्होंने जो सेवाएँ की थीं, उनका परिणाम अपमान! राज भक्ति का पुरस्कार अपमान! महारानी को यह असह्य था, क्या कभी कोई वीर

इसे सह सकता है? महारानी को अब पूर्ण विश्वास हो गया कि गोरों का हृदय काला है। महारानी एक दोषी की भांति सर ह्यू रोज़ के पास नहीं गईं। फल-स्वरूप उन्हें अंग्रेज़ों से लोहा लेना पड़ा। कर्नल मैलीसन लिखते हैं, “दुर्व्यवहार के कारण ही महारानी को बलवा करना पड़ा।”

बहुत से अंग्रेज़ लेखकों ने झांसी के बलवे और हत्याकाण्ड का दायित्व महारानी के सिर मढ़ा है परन्तु यह बात पूर्ण रूप से सिद्ध हो गई है कि महारानी का झांसी के बलवे और हत्याकाण्ड में तनिक भी हाथ न था। महारानी ने तो अंग्रेज़ों की ही सहायता की थी। यदि बलवे में उनका हाथ होता, तो वे अंग्रेज़ स्त्रियों को अपनी शरण में क्यों लेतीं और उनको सहायता क्यों करती? यदि वे बलवाइयों के पक्ष में होतीं, तो उन्हें क्या पड़ी थी कि वे अंग्रेज़ों के सहायतार्थ अपने १०० आदमी भेजतीं और भूखे गोरों को गुप्त रीति से किले में भोजन कराती? यदि वे चाहती, तो बलवाइयों की मुखिया बन कर नाज़ुक वक्त में स्वयम् अंग्रेज़ों को यमपुरी पहुँचा कर सागर आदि स्थानों में अपना अधिकार जमा लेतीं। यदि वे अंग्रेज़ों के विरुद्ध होती, तो क्या अंग्रेज़ों के प्रबल शत्रु सदाशिव और नत्थे खाँ को परास्त कर झांसी के किले पर यूनियन जैक फहराती? यदि वे प्रारम्भ से बागी होतीं, तो दीवान रघुनाथसिंह की सहायता से विद्रोह का दमन न करतीं। कप्तान पिङ्क, जो बलवे के बाद झांसी के कमिश्नर हुए, लिखते

हैं कि, "झांसी-हत्याकाण्ड में महारानी का कुछ हाथ नहीं था।" यही नहीं, झांसी-हत्याकाण्ड के बचे हुए मि० मार्टिन सन् १८८९ में महारानी के दत्तक पुत्र दामोदरराव को एक पत्र लिखा था। उसमें वे लिखते हैं—

"बेचारी, तुम्हारी माँ के साथ बड़ी क्रूरता और अन्याय किया गया। मेरे अतिरिक्त महारानी की वास्तविक दशा को और कोई नहीं जानता। जून सन् १८५७ ई० के झांसी-हत्याकाण्ड में बेचारी महारानी ने कुछ भी भाग नहीं लिया। इसके विपरीत महारानी ने अंग्रेज़ों को दो दिन तक भोजन दिया ... और हमारी सहायता के लिए सौ हथियारबंद आदमी किले में भेजे ······मेजरस्कीन और कप्तान गार्डन को उन्होंने सलाह दी कि वे दतिया चले जायें परन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया और वे हमारी ही सेना, पुलिस और जेल के आदमियों द्वारा मार डाले गये।" और भी अनेक प्रमाण महारानी की निर्दोषिता को सिद्ध करने के लिए हैं। परन्तु ब्रिटिश सरकार ने अपनी मूर्खता से अपने ही मित्र को शत्रु बना लिया। महारानी के पास बहुत थोड़े सिपाही थे और सरह्यू रोज़ के पास सिपाहियों का टिड्डी-दल था और वह पश्चात्य अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित था। अंग्रेज़ों ने घोर आक्रमण किया; परन्तु महारानी लक्ष्मीबाई के थोड़े से वीरों ने गोरों के दांत खट्टे किये! स्त्रियां तक गोली-बारूद तय्यार करती थीं! महारानी ने पेशवा की सहायता के लिए लिखा। तांतियां टोपी

आया भी, परन्तु अंग्रेज़ों ने उसपर अचानक आक्रमण कर उसे भगा दिया। अँग्रेज़ों ने क़िलों को लेने के लिए भरसक प्रयत्न किया, परन्तु वे विफल रहे। दुर्भाग्य से एक विश्वास-घाती आदमी ने अंग्रेज़ों को यह रहस्य बता दिया कि अमुक ओर से आक्रमण करने से क़िला हस्तगत किया जा सकता है। फिर क्या था वैसा ही किया गया। अंग्रेज़ों ने शहर की दीवाल बेध ली और वे भीतर घुसने लगे। जब शहर में गोरे घुस आये, तब महारानी अपने सिपाहियों के आगे नंगी तलवार लेकर निकलीं। उनकी भव्य-मूर्ति से प्रतीत होता था, मानो रक्तबीज का संहार करने के लिए देवी जा रही हों। बहुत से गोरों को यमपुरी पहुँचा कर, वे फिर क़िले में लौट आईं। जब क़िले के बचने की कोई आशा न रही, तब महारानी अपने दत्तक पुत्र को अपनी पीठ पर बांध, अपने श्वेत घोड़े पर सवार हो और दस-बारह आदमियों को साथ लेकर चक्रव्यूह में होकर निकल गईं। जब ह्यू रोज़ को यह समाचार मिला, तो वे दंग रह गये, क्यों कि अंग्रेज़ी सेना में घुस कर निकलना टेढ़ी खीर थी। सर ह्यू रोज़ ने लेफ़्टिनेण्ट बौकर को महारानी लक्ष्मीबाई के पकड़ने के लिए भेजा। महारानी लक्ष्मीबाई दूसरे दिन एक गांव में अपने दत्तक पुत्र को खाना खिला कर चलने की तैयारी कर रही थीं कि इतने ही में बौकर साहब अपनी सेना सहित आ पहुँचे और महारानी पर आक्रमण किया। महारानी उस समय

अकेली थीं। ऐसी अवस्था में उन्होंने अद्भुत, साहस कौशल और दृढ़ निश्चय का परिचय दिया। उन्होंने पहले तो लेफ्टिनेण्ट वौकर साहब का वेग रोका और फिर चपलता से ऐसा वार किया कि साहब बहादुर घायल हो, छटपटा कर गिर गये। यह देख कर वौकर के साथी भयभीत हो गये और दुम दबा कर भाग गये। महारानी पीठ से अपने दत्तक पुत्र को बांधे हुए, बिना कुछ खाये पिये, १०२ मील लगातार घोड़ा दौड़ाती हुई, कालपी में पेशवा से जा मिलीं। उनके पिता को गोरों ने पकड़ कर फांसी दे दी और झांसी में उन्होंने अमानुषिक और वीभत्स अत्याचार किया। अंग्रेज ग्रन्थकारों के लेखानुसार गोरों ने ४-५ वर्ष के बालकों से लेकर ८०-६० वर्ष तक के बुड्ढे और स्त्रियों की हत्या की। शहर में आग लगा दी। जरा नीचता और अमानुषिकता तो देखिए ? कि बहुत सी कुल-ललनाओं ने अपने सतीत्व की रक्षा के लिए आत्म-हत्या कर ली। सड़कें बच्चों, स्त्रियों, मनुष्यों और पशुओं की लाशों से पट गईं। ३-४ दिन तक झांसी में लूट की गई। मन्दिरों तक को नहीं छोड़ा गया। तैमूर और नादिरशाह ने क्या इससे अधिक लूट की होगी, यह ठीक ठीक नहीं कहा जा सकता! झांसी का विख्यात पुस्तकालय, जिसमें भारतवर्ष की अति प्राचीन पुस्तकें थीं और जिसके देखने के लिए भिन्न भिन्न प्रान्तों के पण्डित आया करते थे, जला कर ख़ाक कर दिया गया। गत युद्ध में जब

लोवेन का पुस्तकालय जर्मन लोगों ने जला दिया था, तब अंग्रेज़ों ने सभ्यता के नाम पर जर्मन लोगों को बर्बर और नीच कहा था। औरङ्गज़ेब पर भी यह दोष लगाया जाता है कि उसने हिन्दू धर्म-पुस्तकों को जलवाया था, पर गोरों ने झांसी का प्रसिद्ध पुस्तकालय जला कर घोरतम बर्बरता और नीचता का परिचय दिया है।

जब ह्यू रोज़ को मालूम हुआ कि महारानी पेशवा से कालपी में जा मिलीं, तब उसने कालपी पर चढ़ाई की और बलवाइयों को कोंच में हराया। महारानी को पेशवा और तांतिया टोपी के बुरे संघटन पर क्रोध आता था और उन्होंने पेशवा को भली भांति समझाया कि जब तक विलक्षण बुद्धि तथा सुव्यवस्था से कार्य न लिया जायगा, तब तक अंग्रेज़ लोगों का हराना सम्भव नहीं। पर महारानी की कौन सुन ने वाला था? अंग्रेज़ों ने आक्रमण किया। यद्यपि पेशवा की सेना खूब लड़ी; परन्तु अन्त में बलवाइयों के पैर उखड़ गये और राव साहब पेशवा और बांदा के नवाब आदि बड़े-बड़े वीर भागने लगे परन्तु महारानी ने पेशवा को धीरज दिलाया और अपना घोड़ा मँगा कर अपने सिपाही बुलाये और अंग्रेज़ों पर अचानक घोरतम आक्रमण किया। महारानी ने ऐसे दृढ़ संघटन से आक्रमण किया कि "लाइट फील्ड" तोपों के गोले बन्द होगये। रानी गोरों पर ऐसी टूटीं, जैसे बाज़ कबूतरों पर टूटता है। घोड़े पर चढ़े हुए और लगाम को

मुँह से पकड़े हुए महारानी दोनों हाथों से सड़ासड़ तलवार चला कर गोरों को कठफूलों की तरह काटते-काटते तोपों के मुँह के पास बीस फीट तक चली गईं। वे साक्षात चण्डी मालूम होती थीं और लोगों के मुँह से सहसा यह निकलता था—

लाल रसना अपार बार बिथुरे से बार,
बङ्क भृकुटी सुधार लगी खेले चौगान।
मची महा ललकार धक मार मार,
यों रुधिर अपार लगी नदी लहलहान॥
तहां लै कर दुधार पिले झूमत जुझार,
मानै जीतऊ न हार धूरि छाई असमान।
तहां ठमकि ठमकि पगु धरति झमकि,
कर लमकि लमकि काली झारे किरपान॥

तेज और पराक्रम की मूर्त्ति महारानी के अनुपम शौर्य को देखकर कायरों का भी खून उबल पड़ा और भागने वाले सिपाही भी लड़ने लगे। अंग्रेजों के छक्के छूट गये और यही प्रतीत होता था कि विजय श्री बलवाइयों के हाथ रहेगी; परन्तु इस विपत्ति के समय में सर ह्यू रोज़ ने ५–६ पलटनें महारानी के विद्युत वेग को रोकने को लगा दी। महारानी अटल थीं; परन्तु पेशवा की सेना लौटने लगी। अंत में महारानी भी लौट कर छावनी चली गईं।

निस्सन्देह युद्ध में शत्रुओं से इतनी हानि की आशङ्का

नहीं, जितनी कि कायरों और बुरे संघटन से। यदि कालपी के युद्ध में प्रारम्भ से महारानी को सेनापति बना दिया जाता, तो अवश्यमेव सर ह्यू रोज़ की हार होती।

कालपी की हार से बलवाई बड़े सोच में पड़े। किंकर्त्तव्य विमूढ़ की भाँति सब बेचैन हो रहे थे और महारानी अंग्रेजों को परास्त करना चाहती थीं। उनकी प्रबल इच्छा थी कि पेशवा की सेना का प्रबन्ध वे स्वयं करें। महारानी ने पेशवा को समझाया कि, अंग्रेजी फौज के सामने आपके नौसिखिये सिपाहियों की एक न चलेगी, इसलिये कोई अच्छा सा किला हस्तगत करके अंग्रेज़ों से लड़ना चाहिये! इसके लिये ग्वालियर के किले का लेना हितकर और सरल होगा क्योंकि झाँसी और कालपी के किले लेना सम्भव नहीं।" महारानी की सलाह से बलवाइयों का जी हरा हो गया। कर्नल मैलीसन महारानी की इस युक्ति की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करते हैं। उनका कहना है कि बलवाइयों में महारानी के अतिरिक्त और किसी में इतनी बुद्धि और रणकौशल निपुणता न थीं, जो ऐसे संकट के समय किला लेने की तरकीब सुझाता। पेशवा की फौज महारानी के कथनानुसार ग्वालियर की ओर बढ़ी; पर पेशवा की मूर्खता के कारण महारानी सेनानायक नहीं बनाई गई। स्वयं सिंधिया सेनानायक बनकर बलवाइयों से मिल जाता तो आगरे के किले पर आज यूनियन जैक न फहराता। स्वयम् गवर्नर

जनरल लार्ड केनिङ्ग ऐसे हताश होगये थे कि उन्होंने तार भेजा कि यदि सिंधिया बलवाइयों से मिल गये, तो मुझे भारतवर्ष से कल ही बोरिया-बँधना बाँधना पड़ेगा!

सिंधिया ने अपनी नामी तोपों से घोर आक्रमण किया। बलवाइयों की सेना में भगदड़ मचा ही चाहती थी कि यह देखकर महारानी ने दो सौ-तीन सौ सवार बुलाये और वे सिंधिया की चुनी हुई सेना पर वज्र की भाँति टूट पड़े और अपनी भुजाली से उनका वध करने लगीं। महारानी की लपलपाती हुई तलवार के सन्मुख सिन्धिया के वीर घबड़ा गये और स्वयं सिंधिया अपनी जान लेकर आगरे भाग गया। इस प्रकार महारानी के अद्भुत पराक्रम से पेशवा की जीती हुई भूमि और ग्वालियर का किला हाथ आ गया। परन्तु पेशवा ने उसका कोई उपयोग न किया भोज और मुजरे ही में अपना समय बिताया। महारानी भोज में सम्मिलित नहीं हुईं और क्रोधित होकर उन्होंने पेशवा से बार-बार कहा कि—"यह समय भोग-विलास के लिये नहीं है। यह समय जीवन-मरण का है। यदि आप सेना की सुव्यवस्था तथा युद्ध की तैयारी में अभी से न लगेंगे, तो फल अच्छा न होगा। न मालूम अंग्रेज़ लोग कब ग्वालियर पर चढ़ आवें।" पर पेशवा पर इस शिक्षा का कुछ भी प्रभाव न पड़ा। देखते ही देखते सर ह्यू रोज़ चढ़ ही तो आये और मुरार की छावनी को बलवाइयों से छीन लिया। पेशवा को

युद्ध की अब सूझी और तान्तिया टोपी ने महारानी से उचित सलाह देने की विनय की। महारानी ने नागिन की भाँति क्रोधित होकर ताँतिया टोपी को फटकार कर कहा कि तुम लोगों को युद्ध की अब सूझी, जब शत्रु ने एक छावनी जीत भी ली। मैंने कितने पहले कहा था कि भोग-विलास को छोड़ो और शिवाजी की भाँति हर समय युद्ध के लिये तत्पर रहो। पर मेरी कौन सुनता है? मैं अपनी सी करने को तैयार हूँ।" अंग्रेज़ों को पेशवा का डर न था। वे महारानी से ही डरते थे, क्योंकि वे समझते थे कि यदि कोई उन्हें हरा सकता है, तो महारानी लक्ष्मीबाई ही। महारानी अपने सिपाही लेकर आगे बढ़ीं और अचानक अपनी तोपों को दगवाने की आज्ञा दी। अंग्रेज़ों को ख्याल भी न था कि महारानी ऐसा चातुर्य करेंगी। अंग्रेज़ों के छक्के छूट गये! परन्तु उन्हों ने एक चाल चलकर महारानी की सेना को बीच में से घेर लिया। महारानी ने आगे बढ़कर चुभते हुये शब्दों से अपने सिपाहियों को प्रोत्साहित किया। महारानी के सिपाही थोड़े थे और अंग्रेज़ी सिपाही बहु संख्या में थे, पर महारानी के सिपाही उत्साह में उनसे कहीं बढ़े चढ़े थे। उनकी मार के सामने जब ब्रिगेडियर साहब की एक न चली, तब कर्नल रैन्स भी अपना दल लेकर आगे बढ़े। अंग्रेज़ी सेना दिल खोलकर लड़ी, पर महारानी पहाड़ की भाँति अचल थीं, इसलिये ब्रिगेडियर और कर्नल साहब को उस दिन

युद्ध बन्द करना पड़ा। महारानी का रण-कौशल देखकर सर ह्यूरोज आदि सेनानायकों पर निराशा छागई। दो-तीन दिन युद्ध होता रहा और महारानी की धाक जम गई। ता० १६ जून सन् १८५८ ई० को ब्रिगेडियर साहब फिर जुटे और उन्होंने कर्नल हिक्स और कप्तान हेनेज़ को अपनी-अपनी सेना सहित महारानी को सहायता देने वाले पेशवा के तोपखाने को नष्ट करने भेजा। फल-स्वरूप महारानी को सहायता देने वाले तोपखाने के गोलन्दाज और पेशवा की पैदल सेना रणक्षेत्र छोड़कर भाग गई और चारों ओर से अंग्रेजी सेना ने बचे-खुचे बलवाइयों को घेर लिया। पेशवा की सेना भी भाग गई। अंग्रेजी सेना महारानी और उनके बचे-बचाये सहायक सिपा-हियों पर टूट पड़ी। चारों ओर हाहाकार और चिल्लाहट मची हुई थी। कौन वीर होगा, जो इस घेरे में से निकलने का साहस करे? गोरे दनादन गोलियाँ बरसा रहे थे और अपनी तेज किरचें बचे-खुचे मुट्ठी भर महारानी के सहायक बलवाइयों के हृदय में भोंक रहे थे। रणकौशल की मूर्ति महारानी लक्ष्मीबाई घेरो व्यूह में से अपनी दो दासियों और दो—एक स्वामिभक्त सरदारों को बाहर निकाल लेने का प्रयत्न कर रही थीं और साथ ही वे यह भी चाहती थीं कि उनका पवित्र दिव्य शरीर मृत्यु—उपरान्त विधर्मी गोरों के स्पर्श से कलुषित न होने पावे। गोलियों की सायँ-सायँ, तलवार की खचाखच ध्वनि दिग्मण्डल में व्याप्त थी। गोरे

लोग अपने इने—गिने शत्रुओं पर घोर प्रहार कर रहे थे। ऐसे भयानक व्यूह में से महारानी ने अपना घोड़ा निकाल ही लिया और अपनी दासियों और सरदार रामचन्द्र राव को भी वे सुरक्षित बाहर निकाल लाईं। ब्रिगेडियर साहब बहुत झेंपे और अपने रण—बाँकुरे गोरे सवारों को महारानी के पीछे दौड़ाया। उन्होंने महारानी पर अन्धाधुन्ध गोलियाँ बरसाईं। एक क्रूर गोली महारानी की पीठ में लगी और वे कुछ शिथिल हो गईं। इतने ही में गोरे सवार आ पहुँचे। फिर युद्ध छिड़ गया। महारानी ने उन्हें खूब छकाया। गोली मारने वाले गोरे को अपनी तलवार का मज़ा चखाकर वे फिर आगे बढ़ीं कि इतने ही में उनकी दासी पीछे से चिल्लाई। महारानी एकदम पीछे फिरीं और दासी पर आक्रमण करने वाले गोरे को काट डाला और वे फिर निकल भागीं। पर दुर्भाग्य से उनका घोड़ा एक नाले को देखकर अड़ गया और आगे न बढ़ा। उस दिन महारानी के पास अपना घोड़ा न था। यह अड़ियल घोड़ा सिंधिया के अस्तबल का था। महारानी एक तो थकी हुई थीं और फिर एक गोली उनके लग चुकी थी। तिस पर उनका घोड़ा अड़ गया। बस, गोरे सवार फिर आन पहुँचे। महारानी ने अपनी अद्भुत कला से शूरवीर गोरों को चकित कर दिया। घायल महारानी गोरों को गिराने लगीं। पर एक सवार ने अपनी जान पर खेल कर पीछे से वार किया और महारानी

के सिर का दाहिना भाग विछिन्न हो गया और उनकी एक आँख निकल आई। एक दूसरे सवार ने उनकी छाती में किर्च भोंक दी। महारानी ने अपने हत्यारे पर अपनी प्यारी भुआली फेर दी और उनकी प्यासी तलवार ने रक्तपान करके गोरे के दो—दो टुकड़े कर दिये। महारानी को कमज़ोरी आ रही थी। उन्होंने अपने स्वामिभक्त सरदार रामचन्द्र राव को इशारा किया। रामचन्द्र राव का गला रुँध गया और अश्रु-पूर्ण नेत्रों से वे महारानी को एक समीपवर्त्ती कुटिया में ले गये। उनको प्यास लगी हुई थी। गंगा-जल दिया गया। महारानी ने अपने दत्तक पुत्र को प्यार किया और भावीभारत के भलाई की चिन्ता करती हुई, भारतवर्ष की स्वतन्त्रता रूपी देवी, महारानी लक्ष्मीबाई, अपनी कीर्त्ति अमर करके पार्थिव रूप से सर्वदा के लिए विलीयमान हो गईं!

महारानी की मृत्यु से बलवाई लोग हताश हो गये। ताँतिया टोपी ने ब्रिटिश सरकार की नाकों दम कर दिया, पर अन्त में ताँतिया टोपी और राव साहब पकड़े गये और वे फाँसी पर लटकाये गये।

बलवाइयों की हार रही और हार का मुख्य कारण था—महारानी को सेना नायक न बनाना। महारानी में उन शक्तियों का समावेश था, जिनको पाकर मनुष्य बलशाली साम्राज्य की स्थापना कर सकते हैं; परन्तु पेशवा के भूके

आत्माभिमान ने उनकी उन दैवी शक्तियों का पूर्ण विकास न होने दिया। बलवाइयों में यदि कोई रणपण्डित, कूटनीतिज्ञ और उच्च कोटि का योद्धा और सङ्गठनकर्त्ता था, तो वह महारानी लक्ष्मीबाई ही थीं। यदि पेशवा प्रारम्भ से ही युद्ध—सञ्चालन का भार महारानी को सौंप देते, तो भारतवर्ष को आज दासता के तीखे काँटों में न घसिटना पड़ता। युद्ध की संक्रामक स्थिति में महारानी ने अपने कौशल से अंग्रेजों के दाँत खट्टे करके पेशवा की बात रखी थी। यदि उस वीराङ्गना को कालपी और ग्वालियर की विपुल युद्ध—सामग्री सौंप दी जाती, तो पेशवा को झूठे अभिमान के कडुवे फल न चखने पड़ते। महारानी की युद्ध निपुणता और आश्चर्यजनक सङ्गठन–शक्ति और वीरता की भूरि—भूरि प्रशंसा उनके विपक्षी भी करते हैं। सर ह्यू रोज़ महारानी की वीरता के क़ायल थे। वे लिखते हैं:—

"The Rance was the dravest and the best military leader of ho rebels."

अर्थात् "बलवाइयों की ओर से महारानी ही अत्यंत वीर और सब से उत्तम सेनानायक थीं।" उनकी कूटनीतिज्ञ और उनके अतुल पराक्रम ने अंग्रेज़ों को चकित कर दिया था। इतिहास लेखक और पार्लियामेण्ट के सदस्यों ने गवेषणापूर्ण शब्दों में महारानी की तुलना फ्रान्स की जौन आफ़ आर्क से की है। कोई कोई अंग्रेज़ लेखक महारानी को

बोडेशिया की पदवी देते हैं। हमारे ख़याल से वे इन सब से सर्वोपरि थीं। वे भारत की तलवार थीं। उन्होंने स्वदेश--प्रेम और स्वराज्य--प्राप्ति में अपना खून बहाया। वे उन स्त्री--रत्नों में से थीं, जिन्होंने भारतमाता का मुख उज्ज्वल किया है। उनका नाम संसार के वीरों के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखने योग्य है। १४ दिसम्बर सन् १८६१ के 'नैशनल गार्जियन' ने महारानी के बारे में लिखा था:—

"The extraordinary actions and heroism of the great lady shed an imperish able lustre on the memorable period of 1857. Ranee Lakshmi Bai, the flower of maiden chivalry, was a lady of 26 or 30 years, exceedingly beautiful and endowed with high spirit, enthusiastic courage and lofty patriotic fervour. She was remarkable also for her immaculate character, strength of mind and physical activity."

अर्थात् "सन् १८५७ ई० के समय पर उस महती महिला के असाधारण कार्य्य एवं उसका अद्भुत शौर्य्य कभी नष्ट न होने वाले तेज की वर्षा करता है। रानी लक्ष्मीबाई स्त्री--वीराङ्गनाओं के उद्यान की पुष्प थीं। उनकी उम्र २६ या ३० वर्ष की थी। अत्यन्त रूपवती थीं। वे उत्साहपूर्ण साहस, देशभक्ति मय ओजित भावना एवं असीम जोश से

परिपूर्ण थीं। उनका शुद्धातिशुद्ध चरित्र, उनका मनोबल एवं उनकी शारीरिक शक्ति प्रशंसनीय थी!" कितने शोक की बात है कि भारत की जौन आफ़ आर्क, वीर रस की मूर्त्ति, महारानी लक्ष्मीबाई की भारतवर्ष में कोई मूर्त्ति (Statue) तक नहीं और न कहीं उनकी बर्सी ही मनाई जाती है? मानसिक पतन और दासता का इससे अधिक घृणोत्पादक उदाहरण और क्या होगा कि डायर की मूर्त्ति के लिए भारतवासियों की थैलियाँ खुल पड़ें और भारतीय स्वतंत्रता की मूर्त्ति, भारतीय विप्लव की आदि पुजारिणी, महारानी लक्ष्मीबाई का गुणगान भी न हो? महारानी की दिव्य जीवनी हमारे स्कूलों को—कम से कम राष्ट्रीय स्कूलों की पाठ्य पुस्तकों में से हो। जब तक हम अपने रत्नों को नहीं अपनावेंगे, तब तक हमें कोई नहीं अपना सकता। सन् ५७ की हार ने हमको ब्रिटिश सरकार का दासानुदास बना कीड़ा मकोड़ा बना दिया! महारानी की मृत्यु क्या हुई, भारत की श्री ही लुप्त हो गई। आज कितने ऐसे मूँछ वाले भारतीय हैं, जो इस बात पर गौरव कर सकते हैं कि महारानी लक्ष्मीबाई उन्हीं में से थीं? यदि आज महारानी जीवित होतीं, तो वे अंग्रेज़ियत में पगे हुए, पट्टियाँ काढ़े हुए, नाज़ुक भारतीय नवयुवकों और विद्यार्थियों को देखकर वे क्या कहतीं? महारानी की आत्मा को भारतवासियों की भीरुता से कितना कष्ट होता होगा? यद्यपि महारानी इस

से शरीर रूप से अदृष्ट हैं, तो भी वे हमारे निकट हैं और हमें अपने आदर्श से प्रोत्साहित कर रही हैं।

भारतीय स्वतन्त्रता की इस आवेग अग्निज्वाला को, आओ, हम सब मिल कर एक बार अत्यन्त भक्ति और अत्यन्त श्रद्धा—के साथ प्रणाम करें!

चंचल कुमारी

रूप नगर एक छोटी सी राजधानी थी जिसके इलाके में सिर्फ एक सौ गाँव थे। परन्तु राजा विक्रमसिंह एक उच्च खान्दान में से थे। और असली क्षत्री के पुत्र थे। चंचलकुमारी राजा विक्रमसिंह की कन्या थीं। यह बड़ी सुन्दरी, साहसी और तीव्र बुद्धि की थी।

चञ्चल कुमारी।

यद्यपि राजा विक्रमसिंह साहसी तथा उच्च आदर्श के न

थे परन्तु पुराने क्षत्रियों के संस्कारों और उनकी पवित्रता का असर उनके खान्दान में पाया जाता था। चञ्चल कुमारी एक उच्च श्रेणी की राजपुत्री थी। यद्यपि उनका शरीर स्थूल था तथापि वह आदर्श हिन्दू रमणी थी। चञ्चल कुमारी अपनी सहेलियों के साथ प्रसन्नता पूर्वक आयु व्यतीत करती थी। अभी तक किसी भी आपत्ति का सामना उन्हें नहीं करना पड़ा था। उन्हें यह भी न मालूम था कि संसार की कोई आपत्ति किस प्रकार की होती है। उन्हें संसार की कोई चिन्ता न थी।

एक दिन की बात है कि राजा के महल में कोई बिसातिन आई, जिसके पास तरह तरह की सुन्दर रङ्गीन तस्वीरें थीं। जो हाथीदाँत के चौखटे पर बड़ी ही सुन्दरता से लगी हुई थी। महल की लड़कियों और सहेलियों ने उस बिसातिन को चारों तरफ से घेर लिया। वे केवल तसवीर ही नहीं देखती थीं बल्कि साथ २ बिसातिन से हँसी ठट्ठा भी करती जाती थीं। यहाँ तक बात बढ़ी कि बिसातिन घबरा उठी। कहने लगी तुम मुझको न सताओ यह तसवीरें मैं तुम्हारे लिये नहीं बल्कि राजकुमारी चञ्चल देवी के लिये लाई हूँ। इतना कह उसने सब तसवीरें पिटारी में बन्द कर ली। इतने में सभी लड़कियाँ चुप रह गईं।

यह हाल देख बिसातिन को बड़ा अचरज हुआ कि यह सब लड़कियाँ इस प्रकार क्यों चुप रह गईं परन्तु उसने जब

फिर कर देखा तो एक बड़ी युवा लड़की पीछे आती हुई दिखाई दी। उसी को देखकर सब लड़कियाँ सहम गई थीं। यह युवा लड़की स्वयम् ही तसवीर थी और नख से सिख तक सुन्दरता के एक अद्भुत साँचे में ढली थी।

यह चञ्चल कुमारी थी। आते ही उसने कहा—"जो तसवीरें तुम मेरे लिये लाई हो केवल वही मुझे दिखाओ।" बिसातिन ने अकबर, शाहजहाँ, जहाँगीर, नूरजहाँ आदि की तसवीरें दिखाई। चञ्चल बोली यह तो हमने देख लिया परन्तु क्या तुम्हारे पास हिन्दुओं की तसवीरें नहीं हैं। उसने जवाब दिया, जरा ठहरिये, मैं अभी दिखलाती हूँ। झट एक बण्डल खोलकर राजा मानसिंह, जगतसिंह आदि की तस्वीरें दिखाई। चञ्चल ने कहा यह हिन्दुओं की तसवीरें नहीं हैं यह तो बादशाह के नौकरों की तसवीरें हैं। फिर बिसातिन ने राना प्रताप, राना अमरसिंह, राना करणसिंह, राना जसवंतसिंह आदि की तसवीरें दिखाईं। इन सब को चञ्चल ने पसन्द किया और मुँह माँगा दाम दिया। बिसातिन ने एक तसवीर जान बूझकर छिपा रक्खी थी जिसे उसने नहीं दिखलाया था! परन्तु फिर हाथ जोड़कर बोली—राजकुमारी देखो! यह तसवीर तुम्हारे शत्रु की है इसी कारण मैंने नहीं दिखलाया। चञ्चल ने कहा—'यह किसकी है?' बिसातिन ने कहा—'यह उदयपुर के महाराज राना राजसिंह की है।' चंचल मुस्कुरा कर बोल उठी—राजसिंह

बड़ा वीर और मनचला है तथा राजपूत जो वीर होते हैं किसी स्त्री से वैर नहीं करते। ला! यह तसवीर मैं अवश्य लूँगी। क्योंकि यह एक ऐसे राजा की तसवीर है जिसको अपने हिन्दूपन का सदा अभिमान है।" बात यह थी कि किसी कारण से उदयपुर के राजाओं और रूपनगर के राजाओं में मुद्दत से अनबन चली आती थी। इसीलिये बिसातिन ने राजसिंह को चञ्चल का शत्रु बतलाया था।

चञ्चल कुमारी ने राजसिंह की तसवीर ले ली और खूब अच्छी तरह देख भालकर पूछा—ऐ बिसातिन! इसका दाम क्या है? बिसातिन ने और तसवीरों से दुगने दाम माँगे। इस पर सब लड़कियों ने कहा—वाहरी बिसातिन! इस तसवीर में तो खूब दुगने दाम कहे। बिसातिनने कहा-यह मूल्य इस तस्वीर की निछावर भी तो नहीं है। यदि तुम दूसरे वीरों की तसवीरें देखना चाहती हो तो लो मैं और भी दिखाती हूँ। यह कहकर औरङ्गजेब की तसवीर निकाल कर रख दी।

उन दिनों में दिल्ली के तख्त पर औरंगजेब ही बादशाह था। उसके कारनामों को राजपूत क्षत्राणियाँ और लड़कियाँ खूब जानती थीं। औरंगजेब के नाम से चिढ़ती थीं। सभों ने हँसी में कहा—"इसकी तो गरदन भी झुक गई है।" एक ने हँसी ही हँसी में तसवीर ज़मीन पर गिरा दी और अपने पाँव से कुचल डाला। यह तमाशा चंचल कुमारी को अच्छा न लगा उसने कहा—"यह भलमंसी का काम नहीं।

बिसातिन ने कहा—यदि यह ख़बर कहीं बादशाह तक पहुँच जाय तो रूपनगर के क़िले की ईंट तक का पता न लगे।'

यह सुनकर चंचल कुमारी चौंक पड़ी, और क्रोधित होकर कहा—"सब लड़कियाँ एक तरफ़ से बारी २ से इस तसवीर पर लात मारो।"

राजपूताने में लड़कियाँ लड़कों का पुतला बनाकर उस पर नाचा करती थीं। यही बरताव बादशाह की तसवीर के साथ किया गया। बिसातिन के होश उड़ गये। वह डर गई कि कहीं मेरे तसवीर के दाम भी न मारे जांय परन्तु ऐसा न हुआ। चंचल ने उसके दाम देकर बड़े आदर से उसे बिदा किया।

यद्यपि यह एक हँसी ही हँसी थी क्योंकि बचपन की नादानी थी परंतु इस हँसी से ही चंचल कुमारी के अगले जीवन में कई शिक्षाप्रद बातें पैदा होगईं। बिसातिन तसवीरें बेचती हुई अनेक शहरों को जाया करती थी। कुछ दिन पश्चात् वह दिल्ली लौट कर आई क्योंकि वहाँ उसके लड़के की दूकान थी और वहीं से वह तसवीरें ले जाया करती थी। उसके मुहल्ले में एक स्त्री रहती थी जिसका नाम दरिया बीबी था। वह शाही महल में सुरमा बेचने जाया करती थी। बिसातिन ने बातों ही बातों में रूप नगर की राजकुमारी का सब किस्सा सुना दिया।

दरिया बीबी का शायद यह मंशा न रहा हो कि वह

खबर बादशाह तक पहुँचे परन्तु जब बादशाह की लड़की जेबुन्निसा ने यह खबर सुनी तो उसने यह बात उदयपुरी बेगम से जाकर कहा! इस उदयपुरी बेगम का उदयपुर के राजाओं से कोई सम्बन्ध न था क्योंकि यह ईसाइन थी और दारा शिकोह के महल में रहती थी। जब दारा शिकोह को औरंगजेब ने मार डाला तो उसकी बीबी को अपनी बीबी बना लिया और यही बीबी औरंगजेब की सब से प्यारी बीबी अंत समय तक रही।

बादशाह हर बात में उससे सम्मति लिया करता था। जब कभी कोई चिट्ठी बादशाह अपने लड़कों के पास भेजता था तो अपनी इस बीबी का हाल भी लिख दिया करता था। उदयपुरी बीबी ने चञ्चल कुमारी वाला सारा किस्सा बादशाह को सुनाया और उससे कसम लेकर कहने लगी— "कि उस समय मैं खुश हूँगी जब चञ्चलकुमारी मेरे महल में आकर मेरा पेचवान ठण्डा करे और चिलम भर कर हुक्का खड़ा थे।" "साथ ही इसके जेबुन्निसा कहने लगी कि मैं उस चञ्चल से अपने पैर दबवाऊँगी।" चाहिये तो यह था कि औरंगजेब यह सुनकर चुप रह जाता, परन्तु वह भी एक अजीब प्रकृति का मनुष्य था। उसने रूपनगर के राजा विक्रमसिंह को लिखा कि "चञ्चलकुमारी को भेज दो मैं उसके साथ शादी करूंगा।"

उस समय यह खबर रूपनगर पहुँची सब लोगों में

खलबली मच गई। जोधपुर, अम्बर के राजाओं ने अपनी २ कन्यायें मुगल बादशाहों को दे रक्खी थी। उनके सामने रूपनगर का राजा तो कोई चीज़ न था। भट बोल उठे— "यदि लड़की शाही महल में जाती है तो कोई हर्ज नहीं— बादशाहों का एक दूसरे से सम्बन्ध होता ही है औरंगजेब तो इस समय सारे देश का मालिक है। चंचलकुमारी यह बात सुनकर जल भुन गई और एक स्वांस में ही सैकड़ों उलटी सीधी सुना दी।

शाही महल की बेगमों में जो बातें होती थीं वह धीरे २ सारे देश में फैल जाती थीं। शाही महल में जोधपुर के खान्दान की एक स्त्री व्याही थी। वह सब से ज्यादा आदर के योग्य शाही महल में थी परन्तु वह सदैव दुखित रहा करती थी। अहदनामे के अनुसार वह सारी रस्में अदा कर सकती थी यहाँ तक कि मूर्ति पूजा भी कर सकती थी। इसका सब से ज्यादा मान औरंगजेब भी किया करता था। जब उसने सुना कि बादशाह ने किसी कारण से चंचल को अपने महल में बुलाया है तो उसको और भी ज्यादा दुख हुआ। वह नहीं चाहती थी कि किसी और हिन्दू स्त्री का अपमान हो। उसने औरंगजेब को बहुत समझाया कि लड़कपन की बातों पर ध्यान देना बादशाह को उचित नहीं परन्तु औरंगजेब ने एक न मानी। अंत को उसने अपनी एक विश्वास पात्र दासी को जिसका नाम 'देवी' था जोधपुर

भेजने के बहाने से रूपनगर भेज दिया। उस दासी से चंचल को कहला भेजा कि "हिन्दुओं की नाक कट गई उनको अपने मानापमान को कुछ भी ध्यान नहीं। मैं जब यहाँ से आई हूँ प्रति दिन अपनी मृत्यु माँगती हूँ अब सुना है कि तू दिल्ली आ रही है बादशाह ने तेरी सब बातें सुन ली हैं। उदयपुरी बेगम ने प्रण किया है कि तुझसे चिलम भरवाऊंगी और जेबुन्निसा पाँव दबवावेगी' क्या तू यह अपमान देख सकेगी? मैं समझती हूँ कि तू एक क्षत्रीकुल की राजकन्या है तुझसे कभी भी ऐसा अपमान न सहा जायगा। राज-पूताने वाले तो निर्लज्ज हैं ही, क्योंकि उन्होंने जजिया देना शुरू कर दिया है। उनके राज्य में अब गोहत्या भी शुरू हो गई है। वे एक दूसरे के शत्रु हो रहे हैं कोई किसी की मदद भी नहीं करता। परन्तु हाँ! उदयपुर में अबतक हिन्दूपन के चिन्ह पाये जाते हैं। राना वीर क्षत्री है। यदि तू उनकी शरण लेगी तो शायद अवश्य सहायता मिले। अन्य से किसी प्रकार की आशा नहीं। तू यह मत समझना कि मैं किसी द्वेष वश यह शिक्षा तुझे दे रही हूँ। यह भी सम्भव है कि शायद कोई तुझसे आकर कहे कि जोधपुरी रानी चाहती है कि उसका पुत्र गद्दी पर बैठे, इसलिये वह किसी राजपूतनी को महल में नहीं आने देती। मुझको इसका ज़रा भी ख्याल नहीं, मैं विधर्मी होगई हूँ, धर्म से पतित होकर दुखद जीवन व्यतीत करती हूँ।"

'देवी' ने जाकर यह सब ख़बर चंचलकुमारी को सुनाई। बादशाह का परवाना भी तब तक वहां पहुँच गया। चंचल को उस दिन बड़ा दुख हुआ। उसकी सहेली निर्मल बाई उसके पास आई और कहने लगी। बाई जी! चिंता करना व्यर्थ है ईश्वर की ऐसी ही इच्छा थी।

चंचल—सत्य है ईश्वर की यही इच्छा है इसमें किसी का वस नहीं परन्तु चाहे जो कुछ हो मैं मुग़ल की लौंडी बन कर रहने वाली नहीं।

निर्मल—क्या कोई ऐसा उपाय हो सकता है कि तुम्हें दिल्ली न जाना पड़े।

चंचल—उपाय तो बहुत है परन्तु मेरे 'ना' करने से पिता पर विपत्ति का पहाड़ टूट पड़ेगा।

अभी शाही सेना रूपनगर पहुँच कर खून की नदी बहा देगी।

निर्मल—तो भला फिर क्या करोगी।

चंचल—मैं विचारती हूँ कि या तो राह में विष खाकर प्राण त्यागूंगी या दिल्ली पहुँच कर यह दिखाऊँगी कि एक असल राजपूतनी को छेड़ने का क्या फल होता है। क्या हंसनी कभी बगुले की पत्नी बन सकती है?

निर्मल—क्यों न हो। आप भी तो आखिर राजपूतनी ही हैं परन्तु एक बात मैं भी कहती हूँ कि राना राजसिंह बड़ा दयालु पुरुष है, आप उसको पत्र भेजें वह आपकी सहायता अवश्य करने आवेगा।

राना राजसिंह का नाम सुनते ही चंचल कुमारी की गरदन शर्म से नीचे झुक गई, परंतु फिर कुछ सोच विचार कर बोली 'राजस्थान में केवल वही एक ता क्षत्री वंश है जिसको अपने हिन्दूपन का कुछ ध्यान है। राजसिंह बड़ा शूरवीर सिंह पुरुष है! परन्तु औरंगजेब से उसका क्या मुकाबला! जोधपुरी रानी ने भी यही सन्देशा कहला भेजा है, परंतु मैं विचार कर रही हूँ कि कहीं ऐसा न हो कि मेरे कारण रूपनगर और उदयपुर दोनों संकट में फस जाँय। क्योंकि राना राजसिंह मुझ स्त्री जाति की आर्त पुकार सुनकर अवश्य दौड़ता हुआ आवेगा। जय और पराजय तो दैवाधीन है, परन्तु वह कभी भी लड़ाई से मुख न मोड़ेगा। दूसरी बात यह है कि मेरा पिता कभी उदयपुर से सहायता लेना नहीं चाहता।

निर्मल— तू इस समय क्या विचार कर रही है कौन जाने तेरी आर्त विनय पर ही रूपनगर और उदयपुर के बीच मित्रता ही हो जाय? क्या यह असम्भव है?

चंचल देवी ने सिर उठाकर एक नज़र निर्मल की ओर देखा वह समझ गई कि निर्मल का क्या मतलब है। उसके चेहरे से एक प्रकार की तिलमिलाहट सी झलक पैदा हो गई परन्तु उसकी बात का कोई उत्तर न दिया। वह बोली जाओ! कलम, दावात और कागज ले आओ साथही अनन्त मिश्र को भी लेती आओ।

कुछ देर के बाद निर्मल, अनन्त मिश्र को साथ लेकर सब सामान सहित आ उपस्थित हुई। चंचलकुमारी ने एक पत्र लिखा और अनंत मिश्र के हाथ एक अमूल्य मोतियों का हार और पत्र देकर समझाया कि जिस समय यह पत्र महाराज पढ़ने लगें, तुम यह हार उनके गले में डाल देना और कहना कि एक राजकन्या ने सहायता की भिक्षा मांगी है। राज कन्या का धर्म डूबना ही चाहता है तुम्हारे अतिरिक्त कोई क्षत्री दिखलाई नहीं देता जो उसका धर्म बचावे यदि तुम उचित जानो तो उसको अपनी शरण में लो।

यह सुन अनन्त मिश्र उसी समय उदयपुर की ओर चल दिये। राह में उन्हें चार वणिक मिले। अनन्त मिश्र उनसे पूछने लगा कि 'उदयपुर कितनी दूर है? ये वणिक भेष में डाकू थे जो राह चलतों को लूटने के लिये वणिक भेष धर घूमा करते थे? इनका निवास भी समीप ही एक पहाड़ी पर था, उन्होंने उत्तर दिया, "उदयपुर यहाँ से थोड़ी दूर पर है।" चलो आपके साथ हम भी वहीं चलते हैं।

पाँचों आदमी एक साथ चलने लगे और कुछ ही दूर गये होंगे कि चारों डाकुओं ने अनन्त मिश्र को घेर कर पकड़ लिया और वृक्ष की जड़ में बाँध सब माल असबाब छीन लिया परंतु जिस समय वह अनन्त मिश्र को लूट रहे थे एक सवार घोड़े को दौड़ाता हुआ उधर आ निकला। डाकू डर गये और भाग कर एक खाँई में आ छिपे। अनन्त मिश्र

की यह हालत देख, सवार को दया आ गई। उसने पूछा—क्या मामला है ? उसने रो रोकर अपना सब वृत्तान्त सुनाया और जिधर लुटेरे भागे थे उस ओर अंगुली से इशारा कर दिया। अब ज्यादा पूंछ ताछ करने का समय न था सवार तुरंत ही खाँई की ओर बढ़ा परंतु वह बंद थी। सवार ने उसे वहीं तोड़ दिया और तनक देर ही में एक लुटेरे का सिर धड़ से अलग होकर जमीन पर जा गिरा। राजकुमारी का पत्र, अमूल्य हार, और बहुत सी अशर्फियाँ उसके पास थीं। सवार ने सब ले लीं और फिर दूसरे तीसरे की यही गति बना चौथे को बध करने हेतु तलवार उठाई। तब तो चौथे ने हाथ जोड़ गिड़गिड़ा कर कहा—महाराज़! मैं आपकी शरण हूँ। मुझे जीवन दान दीजिये।' मैं आपका दास हूँ और आपही की सौगंध खाता हूँ आज से कभी भी ऐसा न करूंगा और जीवन पर्यन्त आपका दास रहूँगा। इस जीवनदान के बदले में सदा आपकी सेवा करता रहूँगा। सवार ने पूछा—'तू कौन है।' उसने उत्तर दिया 'मैं जाति का क्षत्री हूँ। आज पर्यन्त लुटेरों का सरदार था। परंतु अब आज से आपका सेवक हूँ। मेरा नाम मानिकलाल है। मानिकलाल पहचान गया कि यह उदयपुर के राना राजसिंह हैं। सिंह की सूरत कभी छिपी नहीं रहती। राजसिंह ने कहा—कि अच्छा, जा तुझे जीवन दान दिया परंतु तूने एक दुखी ब्राह्मण को लूटा है इस कारण थोड़ा दंड अवश्य

देना चाहिये अन्यथा राज धर्म के विरुद्ध होगा। मानिक-लाल बड़ी आधीनता से बोला—महाराज ऐसा दंड दीजिये कि जिससे यह शरीर आपकी सेवा कर सके, मैं स्वयं ही दंड को पा चुका। राजपूत की दीन वाणी ही उसके लिये कठोर दंड है।

राजसिंह ने मानिकलाल को शुभ दृष्टि से देखा फिर कमर से छुरी निकाल उसके बाँये हाथ की एक उंगली काट दी। मानिकलाल को ज़रा भी कष्ट न हुआ। राजसिंह अचम्भे में आकर कहने लगे 'राजपूत' मैंने तुझको दंड दे दिया। जा तू आज से उदयपुर की प्रजा में गिना जायगा। वह तुरंत राजसिंह के पैरों पर गिर पड़ा। राजसिंह ने उसे गले लगा लिया और दोनों चल कर एक चट्टान पर आये। राजसिंह पत्र को खोल कर ध्यान पूर्वक पढ़ना शुरू किया। उसमें यह लिखा था।

राजन्! आप राजपूत कुल दीपक हैं और हिन्दुओं के मस्तक के मुकुट हैं। आपको हिन्दुओं का सूर्य कहा जाता है और आप इस पद के योग्य भी हैं। मैं एक दुखिया कन्या और असहाय अबला हूँ। राजपूताने के मध्यप्रदेश में मेरा रूपनगर स्थान है। मैं राजा विक्रम की पुत्री हूँ। निस्सन्देह रूपनगर का राज्य बहुत छोटा है हमारी इतनी हैसियत नहीं है परन्तु मैं भी तो राजपूतनी हूँ और राजपूताने की कन्या कहलाती हूँ और इसी कारण से आप की दया पात्र हूँ। हे राजपूत-कुल-

तिलक ! मेरी बदनसीबी से दिल्ली के बादशाह ने मेरे संग विवाह करना निश्चय किया है यदि किसी ने रक्षा न की तो दिल्ली के महलों में मुझे अवश्य जाना पड़ेगा। शाही सेना मुझे लेने को आ गई है, मुझे बड़ा दु:ख है। राजपूत कुल की स्वाभिमाननी क्षत्राणी को मुसलमानी धर्म से बड़ी नफरत है। भला यह कैसे संभव है कि राजहंसिनी बगुले के संग रहे। राजपूतनी का विवाह एक तुर्क के साथ (जो हिन्दूधर्म का कट्टर शत्रु है) करना कितनी बड़ी भूल है। मैं बिलकुल तैयार बैठी हूँ विष सदा मेरी अंगूठी में रहेगा। छोटे राज्य की कन्या के इस अभिमान को लोग, भला तो नहीं कहेंगे परन्तु कुछ भी हो मैंने तो अपने चित्त में ठान लिया है कि यदि जोधपुर अम्बर आदि के बड़े-बड़े राजा अपने हिन्दूपन से गिर गये और उन सब के माथे कलंक का टीका लग गया। उनकी कन्यायें तुर्कों के महलों में दे दी गई। तथापि आप अब भी निष्कलंक हैं आप ही की ओर हिन्दू जाति हिन्दू धर्म और हिन्दू आन अभी भी ताक रही है। मैं कल शाम को यहाँ से जाऊँगी और आप की बाट देखती रहूँगी। यदि आप ठीक समय पर आगये तो खैर है। नहीं तो जो भाग्य में बदा है वही होगा। मैं अन्त समय तक दिल्ली पहुँचते-पहुँचते आप की बाट देखूँगी। क्योंकि आप सा हिन्दू राजा किसी हिन्दू कन्या की पुकार सुन कर कभी भी भूल न करेगा, यह मुझे पूरा विश्वास है।

महाराना प्रतापसिंह आपके वंशधर हैं, जिन्होंने जंगलों में रह कर भूखे प्यासे जीवन बिताया था और जिनके पुत्रों का वृक्षों की डालियों में पालन पोषण हुआ था परन्तु धर्म को कभी नहीं जाने दिया। आप राना साँगा के रुधिर हैं। जो रणभूमि का सिंह था। आप बाप्पा रावल की सन्तान हो जिनकी वीरता की कहानियाँ राजपूतों को भली प्रकार ज्ञात हैं। प्रताप का नाम लेने वाले वीर बाप्पारावल के पुत्र साँगा ऐसे वीर पुरुष! एक अबला तुमको सन्देश भेजती है, उसका धर्मपात होने वाला है और साथ ही शरीर त्याग भी आवश्यक है। क्षत्री वीर के अतिरिक्त और कोई उसकी रक्षा नहीं कर सकता। संसार क्षत्री हीन हो रहा है कहीं भी क्षत्रीपन की बू नहीं दिखाई देती। परन्तु प्रताप का वंश ही अभी तक बचा है। आप उस वंश के दीपक हैं। एक अबला की पुकार सुनो और उसे अपनी शरण में लो। आप समझते हैं कि स्त्री रक्षा धर्म है। यदि आप के हृदय में किसी शरणागत अबला की पुकार कुछ भाव उत्पन्न कर सकती है यदि आप उसकी धर्म रक्षा आवश्यक जानते हो तो शीघ्र इस ओर को प्रस्थान करो। त्राहिमाम्! त्राहिमाम्!! त्राहिमाम्!!!

राना राजसिंह ने यह पत्र पढ़ा। यह स्वयं राजकुमारी ने लिखा था। कहीं २ कागज पर अश्रुपात के भी चिन्ह

थे। बाकी किस्सा निर्मल ने अपने हाथ से लिखा था। इस लेख ने राना के चित पर बड़ा प्रभाव डाला। उसने थोड़ी देर बाद बाकी हिस्सा पुनः पढ़ना आरम्भ किया। जो इस प्रकार था—

"महाराज दुखिया राजपूतनी की लाज राजपूत ही के हाथ है। क्षत्री कुल में कभी ऐसा नहीं हुआ, कि किसी दीन दुखिया स्त्री की पुकार को सुनकर भी मदद को न गया हो। स्त्रियों के कारण लाखों और करोड़ों कट मरे हैं तथापि उनकी बहुमूल्य रत्न जान उनकी रक्षा के सहस्रों उपाय करते है। आप द्रौपदी का वृत्तान्त जानते हैं। रुक्मिणी का हाल भी सुना होगा। भीष्म का चरित्र भी देखा होगा। मैं अपने को आप की शरण में डालती हूँ। मेरी बाँह गहो, मेरी लाज रक्खो। यह जो मोती का हार है उसको भेंट स्वरूप स्वीकार कीजिये। मैंने अनन्त मिश्र, अपने कुल पुरोहित को समझा दिया है कि जब आप यह पत्र पढ़ते होंगे वह श्रीमान के गले में डाल देंगे। इसके अतिरिक्त और क्या लिखूँ। यहाँ तैयारियाँ हो रही है। जीवन मृत्यु दोनों के मध्य में हूँ। मृत्यु तो मेरे हाथ में है परन्तु जीवन आप के हाथ में है। मुझे पूरी आशा है कि आप मुझे अवश्य जीवन दान देंगे।"

राना ने पत्र को पढ़ा। चिन्ता में डूब गये कि क्या करना चाहिये। वह बड़े चतुर और वीर पुरुष थे उनको

भली भाँति ज्ञात था कि राजपूतनी की सहायता करने में उदयपुर पर क्या-क्या विपत्तियाँ पड़ेंगी। परन्तु उन्होंने उसी समय चित्त में विचार किया कि इस पत्र के साथ किस प्रकार का बर्त्ताव किया जाय। तुरंत ही उन्होंने मानिकलाल की तरफ सिर उठा कर कहा--इस समय तुम घर का काम काज कर उदयपुर आना। इस ख़त का सो तुमने सुन लिया है, परन्तु इतना ध्यान रखना कि किसी को कानों कान इसकी ख़बर न हो। यह कह कर राना ने कुछ रुपये मानिकलाल को दिये।

उधर अनन्त मिश्र बड़ी चिन्ता में था कि क्या करने आया और क्या हो गया। जब वह इसी चिन्ता में था कि कुछ आदमी और आते दिखाई दिये। वह डरा कि कहीं यह भी लुटेरे ही के दल न हों और मुझे मार डालें। परन्तु यह लुटेरे न थे राजा के नौकर थे और उन्हीं को ढूंढ रहे थे। राजा उस समय शिकार के लिये उदयपुर से बाहर आया था। दैवगति से वह उनसे बिछुड़ गया और वह लोग उसी की खोज में चारों ओर फिर रहे थे।

इन आदमियों में, राना राजसिंह के दो पुत्र भी थे और अन्य सम्बन्धी भी थे। जो करीब ५० के थे। राना ने इनसे कहा—मित्रो! हमको अब एक लड़ाई में जाना है इस समय हमारे पास पचास से ज्यादा आदमी नहीं हैं। इसका परिणाम क्या होगा यह अभी किसी को मालूम नहीं

परन्तु यह निश्चय है कि जीत हार दोनों ही में बड़ी-बड़ी आपत्तियाँ भोगनी पड़ेंगी। जो दुःख से डरते हैं वह इसी समय उदयपुर चले जावें। उनको प्रसन्नता पूर्वक आज्ञा देता हूँ।"

राना की बात सुनकर राजपूत सन्नाटे में आ गये। किसी को यह ज्ञात न था कि क्या हो रहा है और क्या होगा। राना के दोनों पुत्र आगे बढ़े और कहने लगे! राजन्! हम वे पुरुष नहीं हैं कि रण में पीठ दिखावें किन्तु हम वे पुरुष हैं जो रणभूमि में रुधिर और धूल एक कर देते हैं। राजकुमारों की वाणी सुनकर दूसरे राजपूत भी उमड़ आये और कहने लगे कि जब तक जान है तब तक पैर पीछे न हटावेंगे।

राना ने कहा—"वीर पुरुषो! तुम धन्य हो, क्यों न हो, आखिर तो क्षत्री हो! परन्तु तुम बहुत थोड़े हो, और तुम्हें एक बहुत बड़ी सेना से मुठभेड़ करनी है बहुत सोच विचार कर [illegible]। राजपूतों के नेत्र और मुख सब रक्त वर्ण हो रहे थे। वह कहने लगे—हमारा काम राजा के पीछे २ चलना है [illegible] बहुत की हमको कुछ चिन्ता नहीं। जहाँ राजा होगा वहीं हम भी होंगे। राजा को हमारी हर समय [illegible] आवश्यकता है। विचारना उसका काम है हम तो [illegible] आज्ञाकारी सेवक हैं। आप स्वयं भले प्रकार जानते हैं आपको यहाँ पर अपने सिर चलना उचित है।"

अनन्त मिश्र बन्धन से छूटते ही पवन समान उदयपुर की ओर चला और वे ५० वीर रूपनगर की ओर चले और एक पहाड़ी राह पर यथा स्थान छुपकर खड़े हो गये।

चंचल कुमारी को पूरा विश्वास था कि राजा अवश्य २ आवेगा परन्तु समय तंग था। वह क्या जानती थी कि राजा पहुँच गया और राह में देहली की सेना को दण्ड देने के लिये छुप रहा है। उसकी आस टूट रही थी। परन्तु उसको किसी प्रकार की बेचैनी नहीं थी। वह जानती थी कि यदि राजा ने आकर सहायता न की तो प्राण वेधक बिष तो हर समय ही उसकी सहायता कर सकता है।

मानिकलाल भी बड़ा चतुर और धीर था वह राजा से बिदा होकर अपने घर नहीं गया उसने राजा की सेवा में अपने को अर्पण कर रक्खा था। जब सब लोग पहाड़ पर छुप गये तो वह मुगलों का सा भेष बनाकर उनकी सेना में जा मिला।

इधर चंचल के विदा की तैयारियाँ हो रही थीं। स्त्रियों ने उसका शृंगार भले प्रकार से कर दिया। वह दुखिया चुपचाप बैठी देख रही थी। कुछ देर के बाद निर्मल उसके पास आई। उसकी आँखों से अश्रुधारा बह रही थी। चंचल बोली—प्यारी! तू इतनी उदास क्यों है उसने उत्तर दिया—क्या कहूँ कैसा विपरीत समय आ गया है।" चंचल मुसकुरा कर कहने लगी। विधाता के लेख को कौन मेट सकता है। प्रिय बहिन तू कुछ चिन्ता न कर।"

निर्मल—मेरे करने धरने से होता ही क्या है, मैं भी तेरे संग दिल्ली चलती परंतु मैं जानती हूँ कि तुम्हारे जीवन के दिन थोड़े हैं और तुम रास्ते ही में प्राण त्याग करोगी ?

चंचल—ना बहिन ! मैं ऐसा कभी न करूंगी और अंत समय तक राजा की बाट जोहती रहूँगी। मैं कायर नहीं हूँ। कौन जाने कहाँ कब और किस समय में मुझे परमात्मा सहायता प्रदान करे। तू अपनी बहिन को ऐसी नादान न जान। मैं अन्त समय तक धीर धरूंगी।"

निर्मल—ईश्वर तेरी सहायता करे।

चञ्चलः—बस इसी की तो मुझे आशा ही है। तैयारी हो गई, अंतिम समय आ पहुँचा। निर्मल आदि सहेलियाँ चंचल को राजमंदिर में दर्शन कराने को ले गई और सच्चे दिल से प्रार्थना करने लगीं।

चञ्चल ने कहा-प्रभो ! जहाँ कोई सहायक नहीं होता वहाँ तुम अपने भक्त हेतु खड़े होते हो। कोई स्थान ऐसा नहीं जहाँ तुम्हारी रक्षा का हाथ न पहुँचता हो। दाता अब तुमको छोड़ और किसी का सहारा नहीं। अनन्त मिश्र का पता नहीं। प्रभो ! अबला की लाज तुम्हारे हाथ में है।" चंचल की आँख से अभी तक एक भी आँसू न निकलता था परन्तु मंदिर में वह दिल खोल कर रोई और वहाँ से लौट कर माता पिता से विदा हुई।

महल में कुहराम मच गया। सभी कहते थे कि अब

आज से चंचल देखने को न मिलेगी, लोग तरसेंगे परन्तु देख न सकेंगे।

पालकी महल के सामने आई रोती हुई चंचल उसके अन्दर बिठा दी गई। इर्द गिर्द मुसलमानों की सेना थी। एक हजार मुगल आगे और एक हजार मुगल पीछे थे। पालकी के आस पास सहेलियाँ, रथ, दस बीस हिन्दू नौकर संग थे। इस प्रकार शाही फौज ने वहाँ से प्रस्थान किया। यह सब के सब प्रसन्न चित्त थे। जब रूपनगर से कई मील निकल आये, तब चंचल के कान में किसी के गाने का शब्द सुनाई पड़ा।

चंचल के कान खड़े हो गये उसने मन ही मन विचारा परमात्मा ने सहायता के कारण उत्पन्न कर दिये। उसकी आखों से प्रेम के आँसू निकल पड़े और मन ही मन ईश्वर को धन्य-वाद देने लगी। दयालु ? तू कभी पुत्र व पुत्रियों को नहीं भूलता' !

यह गीत गाने वाला मानिकलाल था। जो भेष बदले हुये पालकी के साथ आया था। चंचल ने पालकी का पर्दा खोल कर गाने वाले की ओर देखा वह भी समझ गया कि चंचल गीत का अर्थ समझ गई।

रूप नगर से दिल्ली को केवल एक ही राह थी और वह भी उसी पहाड़ी से होकर थी जहाँ राना राजसिंह का और दल शत्रुओं की ताक में बैठा था। राह बहुत ही कम

चौड़ी थी ज्योंही मुगल सेना पहाड़ों के नीचे पहुँची कि पत्थरों की वर्षा होने लगी। सकड़ों कुचल कर मर गये परंतु पत्थरों की वर्षा करने वालों का पता न लगा। आक्रमण अभी सेना के प्रथम भाग ही पर हुआ था। जहाँ राजकुमारी की पालकी थी वहाँ तक अभी एक पत्थर भी न पहुँचा था। मुगल घबराये, यह प्रतीत होता था मानों आकाश ही पत्थर वर्षा कर रहा हो। बड़ा हुल्लड़ मचा। एक एक को अपनी अपनी जान के लेने के देने पड़ गये। इतने में मुगलों ने पीछे लौटने का विचार किया। क्योंकि आगे राह बन्द मालूम हुई परंतु लौट कर जाना भी तो कठिन काम था। ज्योंही मानिकलाल ने देखा कि बना बनाया खेल बिगड़ा जाता है उसने पालकी तो ऐसे स्थान पर रखवा दी जहां किसी प्रकार का भय न था और आप रूपनगर को चल दिया।

चंचल संतोष से पालकी पर बैठी रही। परंतु मुगल बहुत घबराये हुये थे। आगे बढ़ नहीं सकते थे, पीछे लौटना भी कठिन था। राजसिंह के ५० आदमी अपना २ काम समयानुसार कर रहे थे और शत्रुओं के हृदयों को कम्पायमान कर रहे थे।

मुगल सेना का सेनापति जिसका नाम मुबारक था बड़ा चतुर और साहसी था उसने बहुत विचारा, परंतु कोई बात समझ में न आई। अंत को इसे इस बात से शंका उत्पन्न हुई

कि अभी तक पालकी पर एक भी पत्थर न आया था और भय भी हुआ कि कहीं किसी राजपूत ने तो चंचल के ले जाने का साहस नहीं किया। यह सोच वह अपने घोड़े पर से उतर पड़ा और उसने किसी दूसरी राह से चलने का विचार किया। अभी मुश्किल से उसने विचार की सूचना लोगों को दी होगी कि राजसिंह के आदमियों ने उस पर पत्थर बर्षाना शुरू कर दिया। जिसके फल स्वरूप बहुत से मुगल मारे गये।

मुबारक को अब मालूम हो गया कि शत्रुओं की सेना से मुकाबिला न कर सकेंगे। उसने अपनी सेना को आज्ञा दी कि जिधरसे पत्थर आ रहे हैं उधर ही को बन्दूक चलाओ। मुबारक के साथ जो बन्दूकची आया था उसका नाम हसन अली था। उसने ऐसी गोली चलाई कि जिससे कई राजपूत मार गये और बाकी छिप रहे। कुछ डर गये क्यों कि उनके पास बन्दूक न थीं।

राजसिंह ने सीटी बजाई। राजपूतों की सेना इकट्ठी हो कर सामने आ गई कि जहां से मुसलमान उनको देख न सकें और पीछे की ओर से लोट कर शत्रुओं पर चढ़ाई करने का उपाय सोचने लगे। राजसिंह को अपनी सफलता की आशा न रही थी क्योंकि अब उसके पास ५० से भी कम आदमी थे। वे विचार ही रहे थे कि किस तरह काम करना चाहिये। इसी समय सामने से एक बड़ी सुन्दर कामिनी स्त्री आती

दिखाई दी जो कि बिल्कुल मणियों से ही लदी हुई थी। उसे देख राजपूतों को बड़ा आश्चर्य हुआ। सभी मारे खुशी के उछल पड़े। यह स्त्री चंचल कुमारी थी। जिसने बन्दूकों का शब्द और राना की सीटी सुनकर में बैठा रहना उचित न समझा। वह पालकी में से बिना किसी भय के राना के पास चली आई। उसको देखकर राना ने पूछा—आप कौन हैं।

चंचल-"महाराज मैं एक तुच्छ स्त्री हूँ और आपको प्रणाम करने आई हूँ। आप से एक भिक्षा माँगती हूँ।"

राजसिंह—वह क्या है।

चंचल—"मैं कुछ ऐसी राह में पड़ गई हूँ कि जिसको भली और कुलीन स्त्रियाँ अच्छा नहीं कहतीं। लज्जा स्त्री की शोभा है इसलिये आप मेरे अपराध को क्षमा कीजिये।

राजसिंह—वह क्या बात है। क्षमा कैसी! आपत्ति काल में तुमने स्मरण किया। मैं राजपूत था। तुम्हारी सेवा के लिये आ गया।" चंचल ने राजसिंह की परीक्षा के लिये फिर हाथ जोड़कर कहा—महाराज मैं चंचल हूँ, बुद्धि चंचल है और मेरा नाम भी चंचल है, उस समय मैंने आपको बिना सोचे विचारे बुला भेजा था पर अब मैं दिल्ली जाना चाहती हूँ।"

राजसिंह को बड़ा आश्चर्य हुआ वह कहने लगे हमें तुम्हारे रोकने का कोई अधिकार नहीं। जहां इच्छा हो जाओ परंतु यह समय ही और है। यदि इस समय मैं तुम

को जाने दूं तो मुसलमान समझेंगे कि राना डर गया। राना का वंश किसी को भी नहीं डरता। जब तक लड़ाई नहीं खतम होगी तब तक तुम यहां रहो थोड़ी ही देर में लड़ाई का अन्त होने पर तुम जहाँ चाहो जा सकती हो।"

चांचल—"महाराज! क्या आप एक अनसमझ अबला की भूल को क्षमा न करेंगे?"

राजसिंह—एक-क्या बीस! परंतु यहां तो कुल को बट्टा लगता है। तुम संतोष करो, अभी निश्चय हुआ जाता है योद्धाओ! चलो तैयार हो जाओ।"

चांचल-एक चमकती हुई अंगूठी दिखाकर और हंसकर बोली-"इसमें प्राण बेधक विष है यदि तुम मेरे मार्ग में रुकावट डालते हो तो मैं अभी विषपान कर प्राण त्याग करूंगी।"

राजसिंह—ठठाकर हँस पड़े, और बोले—मैंने बहुत सी राजपूतनियां देखी परंतु तुम सब से ही अद्भुत दिखायी देती हो। तुमको यह भी ज्ञात नहीं है कि असल क्षत्री मारने मरने के समय पर स्त्रियों तक का ध्यान नहीं करते। जब शत्रु सन्मुख हो तो क्षात्र-धर्म शास्त्र यह आज्ञा देता है कि माता, पिता, स्त्री, गौ, ब्राह्मणादि कुछ ही क्यों न हो किन्तु किसी का भी ध्यान मत करो। क्या मजाल जो तुम इस समय हमारे सन्मुख से जा सको! इस समय तो तुम हमारी कैद में हो। हम थोड़े से आदमी हैं यदि विधि पूर्वक लड़ते तो शत्रु को मार गिराते, पर अब हम खुल्लम खुल्ला लड़कर

जान देंगे। हमारे मरण पश्चात् तुम चली जाना और यदि हमारी जय हुई तब भी हम तुम्हें न रोकेंगे।"

राजसिंह की बात सुनकर चञ्चल का चित्त अत्यन्त प्रसन्न हुआ और वह कहने लगी—वीर चूड़ामणि! तुम्हें धन्य है तुममें हिन्दूपन की लाज है, तुम धर्म को समझते हो—मैं तो तुम्हारी दासी हूँ। राजपूतनी आप जैसा सिंह छोड़ कर औरंगजेब जैसे गीदड़ के सत्संग को कब पसन्द करेगी।

बादशाह ने मुझको बेगम बनाने के लिये बुला भेजा था परंतु मैं तुम्हारी बाँदी हो चुकी हूँ। आज्ञा करो तो मैं उस सेना को भी देख आऊँ जो मुझे लेने आई है।"

यह कह कर चञ्चल वहाँ से चल दी। सब अचम्भित से रह गये परन्तु कोई उसे रोक न सका। वह वहाँ से चलकर उस जगह आई जहाँ हसन अली बन्दूकों और तोपों में गोला बारूद भर रहा था और राजपूतों को मृत्युलोक भेजने को उद्यत हो रहा था। सबके सब इस सुन्दर बदनी चञ्चल कुमारी को देख आश्चर्यित हो गये और बोले—अरे! यह सुन्दरी कौन है। जो इस प्रकार निर्भय हो तोपों के सम्मुख आ खड़ी हुई है।"

चञ्चल ने कहा—तुम्हारा सैनिक कौन है।" यह सुनकर मुबारक उसके सामने आया और कहने लगा—क्या आज्ञा है। सेवक हाजिर है। आप कौन हो?

चञ्चल ने कहा—मैं एक तुच्छ स्त्री हूँ आपकी सेवा में कुछ

निवेदन करने आई हूँ। किन्तु तनिक मेरे सम्मुख आ जाओ तो कहूँ! मुबारक राजकुमारी के सन्मुख आ खड़ा हुआ। चञ्चल ने कहा मैं रूपनगर की राज कन्या हूँ। ये सेना मुझे लेने को आई है। क्या आप मेरी इच्छा पूरी कर देंगे।

मुबारक—"यदि आपकी इच्छा बादशाह की आज्ञा के अनुकूल होगी तो मैं उसके पूरी करने में कुछ भी कमी न करूँगा।

चञ्चल—सुनो! मैं नहीं चाहती कि मैं मुसलमान के साथ विवाही जाऊँ। चाहे वह बादशाह हो या तुच्छ आदमी क्योंकि ऐसा करना हमारे हिन्दू धर्म के बिलकुल विरुद्ध है। मेरा पिता एक छोटा सा राजा है और सो भी अत्यन्त दुर्बल। इस कारण उसने अत्यन्त भयभीत होकर मुझे आप को सौंप दिया परन्तु मैंने राजसिंह को बुलाया था सो वे भी मेरे दुर्भाग्य वश केवल ५० आदमी लाये हैं तुम समझ सकते हो कि वे कितने बलवान हैं?"

मुबारक—"अजी! आप क्या कहती हैं ५० आदमी हों, और इतने मुगल मारे जाँय! ऐसा बिलकुल असम्भव है।"

चञ्चल—क्या आप को हल्दी घाटी का युद्ध याद नहीं रहा। राजपूत बड़े लड़ाके होते हैं। वे शत्रुओं की सेना को लेशमात्र भी नहीं गिनते परन्तु मैं नहीं चाहती कि वह ५० अमूल्य जीव भी मारे जायँ। तुम्हारा अर्थ केवल मुझे ले चलना है सो चलो मैं देहली चलती हूँ, परन्तु अब राजसिंह पर तोप मत चलाना।"

मुबारक—मैं समझ गया तुम्हें राजपूतों पर दया आगई। तुम अब प्रसन्नता पूर्वक हमारे साथ चलोगी और लहू बहने देना नहीं चाहती तो मैं इन बातों पर राजी हूँ परन्तु राजपूत क्या कहते हैं?

चञ्चल—राजपूत भला कब मरने मारने से डरने वाले हैं परन्तु आप मुझ पर कृपा करके युद्ध न करें और मेल कर लें।

मुबारक-परन्तु लुटेरों को कुछ दण्ड अवश्य देना होगा।

चञ्चल—मालूम हो गया कि तुम मेरी बात न मानोगे!"
मुबारक (घबरा कर) नहीं २, जब आप चलने पर राजी हों तो मैं सब भाँति आप को प्रसन्न करने के लिये उन्हें न छेड़ूंगा।

चञ्चल—हाँ! हाँ!! चलती तो हूँ परन्तु जिस नीयत से बुलाई गई हूँ वह एकदम असम्भव है। मैं बेगम बनना कभी स्वीकार न करूँगी।"

मुबारक—यह आप क्या कहती हो, मुझ सा चतुर आपके इस धोखे में नहीं फँस सकता। तुरन्त ही उसने चंचल को कैद करना चाहा। चञ्चल इस प्रकार का रुख देखकर बोली—मेरे हाथ में प्राणघातक विष है।

मुबारक—मेरी क्या मजाल है कि आप से जबरदस्ती कर सकूँ परन्तु केवल बादशाह की आज्ञा पूर्ति का ख्याल है।

इधर यह बातें हो ही रही थी उधर राजसिंह युद्ध में उद्यत था। उसने अपने सिपाहियों का स्थान बदल दिया

क्योंकि तोप और बन्दूक के सम्मुख होना बड़ा कठिन काम था।

जब चञ्चल कुमारी की 'मुबारक' से बात चीत हो रही थी। उस समय चञ्चल राजसिंह की ओर भी देखती जाती थी। जब उसने देखा कि राजसिंह ने स्थान बदल दिया तो वह भी वहाँ से हट गई और राना के पास आकर कहने लगी कि लड़ाई से बचना असम्भव है आप कृपा करके अपनी तलवार मुझे दे दीजिये मैं आपकी दासी हूँ और यदि हो सका तो आपके साथ प्राण त्याग करूँगी।" राजसिंह ने हँसकर कहा—तू वीरांगना देवी है यह तलवार ले, मैं तुझे सौंपता हूँ परन्तु इस समय लड़ाई में तेरा काम नहीं। लोग कहेंगे राना ने स्त्री की सहायता ली।"

चञ्चल—आप स्त्रियों को क्या समझते हैं? आपको ऐसा कहना उचित न था।

मुबारक अभी विचार ही रहा था कि इतने में पीछे से तोप की आवाज आई और देखते ही देखते बहुत से मुसलमान मर कर ढेर हो गये क्योंकि वह अभी युद्ध करने के लिये तैयार नहीं थे। बस अब तो उनके पाँव न रुक सके, सभी भाग निकले और जो कुछ थोड़े बच रहे थे वह भी भागने की ताक में इधर उधर झाँकने लगे। यह हाल देख राजसिंह ने उनपर वार करना उचित न समझा।

सब के सब चकित थे कि यह सब कौन थे, क्योंकि

मुसलमान जानते थे कि यह ५० आदमी क्या कर सकेंगे और उधर से राना भी मरने को तैयार था परन्तु ठीक समय पर इस प्रकार सहायता मिलना बड़ी आश्चर्य जनक घटना है। इसका इधर किसी को ध्यान न था।

उधर जब मानिकलाल ने देखा कि राजसिंह के पास आदमी कम हैं और मुसलमानों की सेना बहुत बलवान है तो ज्योंही कि राजपूतों ने मुसलमानों पर हमला किया वह झट रूपनगर चला गया और वहाँ से राजा की सेना लेकर आ पहुँचा और मुसलमानों पर एक वार कर बैठा। इस प्रकार खूब डट कर युद्ध हुआ मुसलमानों की सारी सेना तहस नहस हो गई। मुसलमानों को पराजित कर राजकुमारी को संग लेकर राजसिंह उदयपुर आया।"

जब युद्ध समाप्त हुआ तो मानिकलाल राना के सन्मुख आया और चरणों पर गिर कर बोला—राजन् प्रणाम! राज-सिंह ने उसे गले लगा लिया और पूछा—"तुम अब तक कहाँ थे?" उसने उत्तर दिया—मैं महाराज ही की सेवा में तो लगा हुआ था।" जिस समय शाही सेना मैंने देखी तो मुझे बड़ा भय उत्पन्न हुआ कि केवल ५० आदमी किस प्रकार इतनी बड़ी सेना का सामना कर सकेंगे और ऐसा समय देख कर मैंने रूपनगर से सहायता लेने का विचार किया।

उस ईश्वर को कोटिशः धन्यवाद है कि जिसने आपकी

सेवा करने का समय मुझे दिया। मुझ को यथा समय सहायता मिल गई और उसी का यह परिणाम है जो आपने देखा है। मानिकलाल को राना ने धन्यवाद दिया और उसी समय से दरबार में उसका सत्कार होने लगा।

चञ्चल ने राना राजसिंह के महल में प्रवेश किया और जब किसी प्रकार का भय न रहा तो राना ने उसको बुला भेजा। वह लाज से नीची गरदन किये हुये आई और राना के सामने खड़ी हो गई। राना ने कहा—"राजकुमारी मैंने तुम्हारी आशा पूर्ण कर दी और तुम मुसलमानों से बच गई अब जो कुछ तुम्हारी इच्छा हो सो कहो! अब तुम रूपनगर जाना चाहती हो या अन्य जगह? जहाँ रहना चाहती हो शीघ्र कह दीजिये।

चञ्चल—"महाराज आप मुझे हरण कर लाये हो, क्षत्रियों में प्रायः ऐसा होता है। यद्यपि यह अच्छा नहीं समझा जाता।"

राना—मैंने तुम को हरण तो नहीं किया किन्तु क्षात्र धर्म की रक्षा और राजकुल के मान के विचार से मैंने तुम्हारी सहायता अवश्य की है।"

राना की बातों ने चंचल के दिल में और भी दृढ़ स्थान बना लिया। राजकुमारी अत्यन्त सुन्दरी थी और देश-देश के भूप उससे विवाह करने की इच्छा रखते थे परन्तु वह तो राजसिंह को चाहती थी और जिस समय उसने अनन्त मिश्र के हाथ सहायता को बुलवा भेजा था और संगमें

मोतियों का हार भी भेजा था उससे भी विवाह का परिचय था परन्तु राना ने चंचल की स्वतन्त्रता छीनना उचित न समझा और भली भाँति उसे समझा दिया कि असली राजपूत कभी काम-वश नहीं होते, किन्तु काम उनके पग चूमता है।

चञ्चल के दिल में ज्योंही इन बातों ने स्थान पाया वह बड़ी शंका ग्रस्त हो गई। बेचारी क्या कहती। स्त्रियाँ, मर्दों की तरह साफ़-साफ़ बात-चीत करना उचित नहीं समझतीं। वह वैसे ही सिर नीचा किये खड़ी रही और कहने लगी। महाराज मैं मूढ़ कन्या राजधर्म व कुल धर्म क्या जानूं। यदि आपको इसी तरह बातचीत करनी थी तो आपने मुझ को दिल्ली जाने से क्यों रोका, यद्यपि मैंने आप से उस समय बहुत प्रार्थना की थी।

राना—"मुझको उदयपुर के नाम का ख्याल था मैंने तुमको वचन दे दिया था कि युद्ध समाप्त होने पर कोई भी तुमको न रोकेगा। जहाँ चाहो वहाँ जाओ। इसलिये मैं ऐसी बातचीत करता हूँ।"

चञ्चल—"महाराज आप धन्य हैं वचन पूरा करना सूर्य-वंशी क्षत्रियों का परम धर्म है।"

राना—'राजकुमारी जी! उदयपुर वालों ने बड़ी बड़ी कठिनाइयों का सामना करके यह उपदेश सीखा है कि किसी की स्वतन्त्रता को हानि पहुँचाना अधर्म है। जिस समय

तुमने अपना पत्र और हार भेजा था वह आपत्ति का समय था। आपत्ति के समय बड़े बड़े लोगों की बुद्धि एक किनारे जा बैठती है जिसके लिये पीछे पछताना पड़ता है। भीष्म पितामह किसी राजकुमारी को विचित्र वीर्य के लिये हर लाये थे उसका परिणाम दोनों के लिये भयंकर ही हुआ। इसलिये मैं तुमको पूरा पूरा अधिकार देता हूँ कि जैसा उचित जानो वैसा करो।

चञ्चल—महाराज मैं तो आपही की शरण में आई हूँ।

राना—राजकुमारी जी! आपने मेरे कुल का बड़ा मान प्रदान किया मैं अत्यन्त प्रसन्न हूँ और तुम उदयपुर में रहकर क्षात्र धर्म का पालन कर सकोगी परन्तु एक बात यह है जब तक तुम्हारे माता पिता प्रसन्नता पूर्वक अपनी स्वीकृति न दें और सम्भव है कि पीछे तुमको भी शोक हो। इसलिये यदि उचित समझो तो रूप नगर जाकर अपने माता पिता से मिल आओ।

चञ्चल—"महाराज! जिस पिता ने मुझे औरंगजेब के पास भेजना चाहा था क्या आप फिर मुझको उसके देखने की आज्ञा देना उचित समझते हैं।"

राना ने चञ्चल की ओर प्रेम भरी दृष्टि से देखा और महारानी कहकर अपने पास एक कुरसी पर बिठा लिया। फिर उनका विवाह संस्कार रचाया गया। इस प्रकार प्रसन्नता पूर्वक दोनों सुख चैन से रहने लगे।

राजकुमारी का विवाह हो जाने के पश्चात् कुमारी चञ्चल ने अपनी प्यारी सखी निर्मल को भी उदयपुर बुला लिया और उसका विवाह संस्कार मानिकलाल के साथ करा दिया।

जब इस प्रकार का समाचार दिल्ली पहुँचा तो मारे क्रोध के औरङ्गजेब मद में अन्धा हो गया उसको कुछ आगा पीछा न सुझाई दिया। बार-बार वह चंचल कुमारी का नाम लेकर दाँत पीसा करता था। चञ्चल का उदयपुर जाना औरङ्गजेब के लिये सह्य न हुआ और राजपूतों को मिटा देने की ठान कर सब से 'जजिया'*लेना शुरू कर दिया। इसी के बहाने से कितने ही गाँव उजाड़ कर दिये और तमाम राजपूताने के मंदिर मूर्तियों को नष्ट भ्रष्ट कर दिया। जिन लोगों ने कभी आबू पर्वत की यात्रा की होगी उन्होंने अपनी आँखों यह दृश्य मंदिरों में देखा होगा कि देव मूर्तियों के आँख कान-नाक मुँह अथवा हाथ पैर नष्ट हो गये हैं।

आबू पर्वत पर एक मन्दिर जैनियों का है वह इतना बड़ा और कीमती है कि आगरे के ताजमहल के बाद इस भारतवर्ष में दूसरा नम्बर इसी का है। जैनी लोग बड़े सीधे होते हैं, झगड़ा करना वे नहीं जानते परन्तु क्रोधानल में औरङ्गजेब

---

* 'जज़िया' कर हिन्दुओं से इस लिये वसूल किया जाया करता था कि वह मुसलमान बनना स्वीकार नहीं करते थे इसके बदले में एक बँधी हुई रकम प्रति वर्ष बेइज्जती के साथ बादशाह को देते थे।

ने इनकी मूर्तियों को भी नहीं छोड़ा। बहुत से मंदिर ढहा दिये गये और बहुतों के स्थान पर मस्जिदें बनाई गईं। जिन मंदिरों के ढहाने में बहुत अधिक व्यय की आवश्यकता थी उनकी केवल मूर्तियाँ नष्ट करके छोड़ दिये गये।

राना राजसिंह ने चंचलकुमारी की सम्मति से औरङ्गजेब को एक शिक्षाप्रद पत्र लिखा, परन्तु सब व्यर्थ रहा। उत्तर मिला कि इसका दण्ड उदयपुर को अवश्य कभी न कभी उठाना पड़ेगा। चंचल भी अचेत न थी वह भले प्रकार जानती थी कि औरङ्गजेब अवश्य अपनी क्रोधाग्नि को प्रज्वलित करेगा। इसीलिये वह स्वयं सैनिक कार्यों में भाग लेने लगी और यथाशक्ति उसने देश रक्षा में भाग लेना आरम्भ कर दिया।

औरंगजेब मौका पाकर बहुत बड़ी सेना लेकर उदयपुर में चढ़ाई कर दी। इसके साथ में इतनी बड़ी सेना और सामान था कि जिसका अनुमान नहीं। कहा जाता है कि जितनी सेना ईरान के बादशाह 'कैखुसरो' ने लेकर यूनान पर चढ़ाई की थी, ठीक उतनी बड़ी सेना औरङ्गजेब लेकर अब उदयपुर में चढ़ आया। बेचारा उदयपुर सेना की गणना में दिल्ली के सामने कौन चीज था। हाथी और मच्छर की लड़ाई थी। इतनी सेना इस देश में इसके पहिले कभी इकट्ठी भी नहीं हुई थी। औरङ्गजेब पूरा विचार करके

आया था कि उदयपुर का एक भी आदमी जीता न छोड़ूंगा। जिस औरङ्गजेब ने अपने पिता शाहजहाँ को कैद कर मरवा दिया और अपने सगे भाइयों को जीता ही वध कराया, वह भला किसी हिन्दू राजा को क्यों कर जीता छोड़ रखना पसन्द करता।

औरंगजेब ने अपनी सेना को चार भागों में बांट दिया कि जिसने चारों तरफ से उदयपुर को घेर लिया। राजसिंह भी बड़ा चतुर था उसने तुरंत ही युद्ध स्थान छोड़ पहाड़ की शरण गही। जिसकी राह बड़ी ही कठिन थी और जिस पर वीर राजपूतों के अतिरिक्त और कोई चढ़ने का साहस न कर सकता था। यहां आ राना ने भी सेना के तीन भाग किये (१) दुवारी (२) बेलवाड़ी (३) नयन; जो हर समय तैयार रहते थे। राजसिंह में, सांगा और प्रताप का खून जोश मार रहा था। इस समय उसे अपने पुत्रों की याद आई, सन्मुख बुला कर कहा—ऐ बाप्पारावल के पुत्रो! आज जैसी चढ़ाई उदयपुर में की गई है ऐसी पहिले कभी नहीं हुई थी। बाबर व अकबर के समय में सांगा और प्रताप दुखी थे उस समय मुसलमानों का अधिकार भी देश में दृढ़ न था इस समय देहली उन्नति के उच्च शिखर पर है। उदयपुर दुर्बल है। उधर अगणित सेना है तो इधर केवल थोड़े से इने गिने आदमी हैं परंतु हमको अपने धैर्य्य और वीरता पर पूर्ण विश्वास है क्योंकि उदयपुर की रक्षा में प्रत्येक मनुष्य ने अपना

सर्वस्व अर्पण कर रखा है। दोनों लड़कों ने पिता को प्रणाम किया। राना ने बड़े लड़के जयसिंह को पश्चिम के मोर्चे में रखा और छोटे बेटे भीमसिंह को पूर्व की ओर, स्वयं 'नयन' की तंग घाटी में ठहर शत्रु की बाट जोहने लगा।

औरंगजेब का एक लड़का जिसका नाम अकबर था जो 'दुवारी' की ओर पचास हजार सेना ले, जा डटा। आजमशाह बीच के भाग में अड़ गया। तीसरी जगह उदयपुर सागर तालाब के निकट स्वयं औरंगजेब ने अड्डा जमाया।

शाहजादा अकबर ने पहाड़ी को लेना चाहा, परन्तु 'जयसिंह' सिंह की भाँति गरज कर दौड़ा और उसको गुजरात की तरफ़ मार भगाया। जब 'आजमशाह' सन्मुख आया, तो अंतको उसे भी भागना पड़ा, और मुग़लों की कुछ ऐसी हालत होगई कि सबों को भागने की सूझी। इस भगदड़ में करोड़ों रुपयों का माल राजपूतों के हाथ लगा। हाथी घोड़ा आदि सभी सामान उनके अधिकार में आ गया इतना होने पर भी राजपूत अब भी पहाड़ी पर डटे रहे। समझा कि यदि उदयपुर का अन्त समय है तो युद्ध-स्थल पर ही प्राण देना श्रेयस्कर है।

राजसिंह ने मौक़ा पाकर मध्य भाग की सेना पर चढ़ाई कर दी और सब को घेर २ कर मारा। यहाँ शाहजादी जेबुन्निसा और उदयपुरी बेगम भी बादशाह के साथ थीं। जिस हाथी पर वह दोनों थीं, राजपूतों ने उसे पकड़ लिया। और तो सब लोग भाग निकले, परन्तु यह दोनों पकड़ी गईं।

इनमें जोधपुरी बेगम भी थी जिसको राना ने नहीं पकड़ा किन्तु आदर पूर्वक औरंगज़ेब के पास भेजवा दिया।

औरंगज़ेब ने लौटकर पहाड़ी पर चढ़ने का विचार किया परन्तु जब पत्थरों की वर्षा होने लगी और उधर से गोले आने लगे, और सहस्रों मनुष्य मारे गये तो झख मारकर उसे हार माननी पड़ी। वह तो चाहता था कि उदयपुर को सदा के लिये मृत्यु-शय्या पर सुला दूं, परन्तु कुछ करते न बन पड़ा। राजपूतों ने स्वयं औरंगज़ेब को उदयसागर के निकट घेर लिया। और बड़ी कठिनाई से वह अपनी जान बचाकर भाग सका। इसकी अन्य बेगमें औरंगज़ेब की यह हालत देखकर बहुत घबराईं और इस घबराहट ने तो औरंगज़ेब पर और भी गजब ढा दिया।

उदयपुरी बेगम और ज़ेबुन्निसा दोनों कैद में थीं। महारानी चंचलकुमारी ने उदयपुरी को अपने पास बुला भेजा और उसके बैठने के लिये फर्श और मसनद तैयार करा दी। चंचाल के पास आने के पहिले उदयपुरी बेगम बहुत उदास थी परन्तु चंचाल के आदर सत्कार को देखकर उसे अभिमान आ गया और समझी कि चंचाल भय के मारे मेरा इतना आदर और सत्कार कर रही है। चञ्चल ने उसको बड़ी प्रतिष्ठा के साथ मसनद पर बिठाया 'उदयपुरी कहने लगी—'क्यों तुम्हें मृत्यु ने ऐसा अभिमानी बना दिया है? जो हमें इस भाँति निरादर से बुलाया है"।

चंचल—उसकी इस बात को सुनकर हँस पड़ी और बोली बेगम तुमको नहीं मालूम कि राजपूतों का जीवन मरण अपने हाथ में होता है, और इस समय तुम्हारा भी जीवन मरण हमारे ही हाथ में है, परन्तु इस समय यह कुछ भी हम न करेंगे। हमने तुम्हें केवल इसलिये बुलाया है कि हमारा हुक्का भर दो"। यह सुनकर उदयपुरी बेगम सहम गई, और सर से पाँव तक पसीने से शराबोर हो गई, किन्तु क्रोध से बोल उठी बादशाह की बेगमें हुक्का नहीं भरती हैं ?"

चञ्चल ने उत्तर दिया—"किसी समय में बादशाह की बेगमें थी, परन्तु आज तो हमारी कैदी और दासी हो। इसलिये हुक्का भरने की आज्ञा दी गई है।

उदयपुरी बेगम ने क्रोध से कहा—तुम्हारी क्या मजाल, जो बादशाह की बेगम से हुक्का भरवा सको।

चञ्चल—ऐसा न कहो, किसी समय तुम्हारे बादशाह को भी हमारे राना का हुक्का भरना पड़ेगा। तुम तो कोई चीज़ नहीं हो।

इसी बीच चंचल ने फिर एक दासी को इशारा किया। वह उदयपुरी बेगम को उठाने लगी, परन्तु जब वह न उठी, तो दासियों ने उसे बल पूर्वक उठाया और जब चिलम उसके हाथ में दी गई तो वह अचेत होकर गिर पड़ी। दासियों ने उसे उठा एक सुंदर पलंग पर जा लिटाया।

इसके बाद महारानी ने जेबुन्निसा को बुलाया, पहिले तो

वह घबराई क्योंकि वह सुन चुकी थी कि उदयपुरी बेगम के साथ कैसा बर्ताव किया गया है परन्तु जब महारानी के पास आई, तो उन्होंने बड़ी प्रतिष्ठा से उसको लिया और एक सुन्दर मसनद (तकिया) के सहारे बिठाया। जेबुन्निसा बड़ी चतुर स्त्री थी, उसने बड़ी सुशीलता पूर्व्वक बातचीत की। चञ्चल भी उससे मिलकर बड़ी प्रसन्न हुई और अपने हाथ से उसे पान इत्र दिया। दासियाँ बराबर सेवा करती रहीं और किसी तरह का असभ्य व्यवहार नहीं हुआ और जैसे आदर पूर्व्वक वह आई थी वैसे वापस अपने डेरे तक गई। बाद को जेबुन्निसा और चांचल कुमारी में बड़ी प्रीति हो गई। शाहजादी सदा उसे धन्यवाद देती रही।

दूसरे दिन उदयपुरी बेगम फिर चांचल से मिली और बहुत से जवाहिरात चांचल को देने चाहे कि कैदखाने से छुटकारा मिले, परन्तु चांचल ने कहा—"यदि तुम हम को महारानी मान लो तो छोड़ने में कोई संशय नहीं।"

उदयपुरी बेगम ने जवाब दिया। अरी मूर्ख ! तेरा यह अपराध कभी भी क्षमा नहीं किया जा सकता। यह कहकर वह उठी और वहाँ से चलने लगी। चांचल ने हँसकर कहा—"मैं मूर्ख-गँवार अवश्य हूँ परन्तु आज तो तुमको मूर्ख ही की बाँदी बनना पड़ा है, और तुम जाती कहां हो।"

उदयपुरी बेगम उस वक्त रोने लगी, उसकी आँखों से आँसू झरझर गिरने लगे परन्तु यह उसकी अपनी मूर्खता

थी व्यर्थ चञ्चल को छेड़कर अपनी सुशीलता से लाभ न उठा सकी।

औरंगजेब की दशा भी बहुत बुरी थी। यहाँ तक कि भोजन सामग्री की कमी के कारण सभी आदमी व्याकुल हो गये। इसी बीच बहुत सा सामान मुग़लों का, राजपूतों के हाथ लग गया। तब अन्त को उसे संधि करनी पड़ी। राना ने अपने सरदारोंको बुलाकर सलाह की, दयालशाह मुख्य मंत्री संधि के विरुद्ध था क्योंकि औरंगजेब ने हिन्दुओं को बहुत सता रक्खा था परंतु राना राजसिंह जोबड़ा चातुर और नीतिनिपुण पुरुष था उसने सन्धि करना ही भला समझा। यद्यपि वह जानता था कि औरंगजेब इससमय केवल व्याकुलताके कारण ही सन्धि कररहा है और इसकी बात का कोई एतबार नहीं।

जब सन्धि की शर्तें तय होगईं तो निर्मलकुमारी ने विचार किया कि उदयपुरी बेगम को अवश्य नीचा दिखाया जाय। उसने उसके कान में झुककर कहा—बिना हुक्का भरे तुमको जाने की आज्ञा नहीं है। उदयपुरी बेगम लाल-लाल आँखें करके बोली—दुष्ट तेरी जिह्वा निकलवा लूँगी, मुझे देहली पहुँचाने दे, फिर तेरा और चंचल का हुक्का देखूँगी।" चंचल ने यह सब सुन लिया और कहने लगी—मैंने सुना है कि राना को बादशाह पर दया आ गई है तब तुमको हमारा कृतज्ञ होना चाहिये। क्योंकि कृतघ्नता सब से बड़ा दोष है। तुम तो जब हम सब को देखोगी, तब न! अभी तो

हम तुम से चिलम भरवा लें। राना ने बादशाह को छोड़ दिया, उसके वे मालिक थे, किन्तु तुम्हारी मालिकिन तो मैं हूँ। शाहजादी जेबुन्निसा जा सकती है, परन्तु बिना हुक्का भर लाये तुम्हारा छुटकारा नहीं।

शाहजादी जेबुन्निसा ने चांचल को बहुत कुछ समझाया परन्तु उसने एक भी न मानी उसने कहा—कुछ बात नहीं यही इस झगड़े का कारण है, इससे कहो कि चिलम भरकर ले आवे, जब तक यह ऐसा न करेगी, तब तक जाने न दूँगी। आप चाहें जावें या न जावें।

अंत को जब उदयपुरी बेगम ने देखा कि वह किसी की बात मानने वाली नहीं तो उठी और चिलम पर आग रक्खी, और चञ्चल के सामने हुक्का रक्खा। चञ्चल ने कहा—"देखो! अब कभी तुमको यह साहस न होगा कि किसी के लिये मूर्ख-गँवार आदि शब्दों का प्रयोग करो या हुक्का भरवाने को कहो? शाहजादी जेबुन्निसा की शिफारिश से तुम्हें जाने की आज्ञा है। अब जाकर औरंगजेब से चाहे जो कुछ कहना। जो लड़की बादशाह की तस्वीर पर लात मारती है वह बेगमों से चिलम भरवाने का साहस रखती है और दुनियाँ में किसी से भय नहीं खा सकती।

बेगम रोने लगी। जेबुन्निसा प्रसन्नता पूर्व्वक चञ्चल से मिलकर बिदा हुई। जब यह दोनों डेरे में पहुँच गईं तो औरंगजेब ने दिल्ली को कूच किया।

दिल्ली पहुँचने पर औरंगजेब ने सन्धि पत्र फाड़ फेंका, और पुनः लड़ाई करने की ठानी। जब राना राजसिंह को यह समाचार मिला तो बड़ा क्रोध आया। यद्यपि वर्षों की लड़ाई से उनकी सेना कमजोर हो गई थी राजस्थान के अन्य राजा उनकी मदद करने से काँपते थे तथापि उन्हें कभी भी भय न मालूम हुआ।

जब औरंगजेब ने दुबारा चढ़ाई की तो दुर्गादास राठौर* अकेला उसका सहायक था। औरंगजेब, दुर्गादास का नाम सुनकर डरता था, वह कहता था—"शिवाजी मरहठा मेरे सामने कोई चीज नहीं, यदि दुर्गादास मेरे वश में आ जावे। राना दुर्गादास ने इस समय भी औरंगजेब को बड़ी हानि पहुँचाई और अन्त को उसे मार पीट कर सन्धि करनी पड़ी।

चञ्चल कुमारी के विवाह से रूपनगर और उदयपुर राज्य के बीच गहरी मित्रता हो गई। चञ्चल का पिता विक्रम-सिंह उदयपुर आकर स्वयं राना राजसिंह से मिला और पिछली शत्रुता दूर हो गई।

"धन्य 'चञ्चल' की चञ्चल बुद्धि"

---

* दुर्गादास राठौर का विस्तृत जीवन चरित्र २॥) कीमत का मँगाकर पढ़िये। निराकार पुस्तकालय बनारस सिटी।

दुर्गा देवी

दुर्गा देवी

बूँदी के राजा अजीतसिंह थे जिनकी धर्म-पत्नी का नाम दुर्गादेवी था यह महाराज जयपुर की पुत्री थीं। जो सुन्दर, कोमलांगी सत्य-धर्म-परायण, उज्वल विचार और आत्म सम्मान आदि गुणों में पूर्ण थीं। विवाह के बाद जब से वह बूँदी आई थीं तब से मानो अजीतसिंह को एक बहु मूल्य रत्न मिल गया था। दोनों

में परस्पर प्रेम था। जो लोग सांसारिक प्रेम को घृणा की दृष्टि से देखते हैं वह बड़ी भूल में हैं। लौकिक या पारलौकिक दोनों प्रकार के प्रेम में भेद भाव नहीं रहा करता। जहाँ स्वार्थ-परता की जड़ कट गई हो वहाँ मोक्ष की ही झलक दिखाई पड़ती है।

कहते हैं कि महारानी दुर्गादेवी दान पुण्य अधिक किया करती थीं यही कारण था कि बूंदी के ब्राह्मण और गरीब लोग दिन रात उसको शुभ आशीष दिया करते थे। अपने सम्बन्धियों तथा प्रजाजनों के बीच भी उसका आदर कम न था। राज काजों में भी यह यथा उचित कार्य किया करती थीं जिससे प्रजा के सुख दुख का पूरा वृत्तान्त मिला करता था।

दुर्गा के एक छोटी बहिन थी जिसका सम्बन्ध उदयपुर के राजा अमरसिंह के साथ हो चुका थी। अब छोटी बहिन के विवाह का समय निकट आया तो दुर्गा ने अपने पति से कहा—महाराज ! यदि आज्ञा हो तो मैं कुछ दिन के लिये जयपुर हो आऊं, माता ने बुला भेजा है।

अजीतसिंह ने हँसकर कहा—जाओ आनन्द पूर्वक जाओ परन्तु विवाह के पश्चात तुम स्वयं चली आओगी, अथवा मुझको लेने के लिये आना पड़ेगा। दुर्गा बोली—विवाह होते ही मैं तत्काल आपकी सेवा में उपस्थित हो जाऊंगी। आपको कष्ट उठाने की आवश्यकता न पड़ेगी। दुर्गा जयपुर आई,

आनन्द पूर्वक विवाह सम्बन्धी रीतियां पूरी की गईं, परन्तु हानी हो कर रहती है। जब निकृष्ट दिन आते हैं तो मनुष्य की बुद्धि मारी जाती है। राना अमरसिंह बूंदी की स्त्रियों का रूप देखकर एक दिन राज दासियों से कहने लगा—"बूंदी में सब से अधिक रूपवती स्त्री कौन है। दासियों ने कहा—इस प्रश्न का उत्तर क्या दिया जाय, जिस राजकुमारी के साथ आपका विवाह हुआ है वह किसी से कम सुन्दर नहीं है।

राना ने कहा—मालूम हो गया, उससे भी अधिक रूपवती स्त्रियां यहां होंगी, तुम मुझको बता दो। दासियों ने पहिले तो बहुत कुछ आगा पीछा किया परन्तु जब राना की आग्रह सीमा से बढ़ गई तो एक ने हँस कर कहा, तो लो, मैं बताये देती हूँ परन्तु इससे आपको क्या लाभ होगा। इस नगर में जो सब से अधिक रूपवती स्त्री है उसका विवाह चुका है। वह अजीतसिंह बूंदी वाले की दुर्गा देवी है और वह आपकी बड़ी साली है उसका मुख पूर्णमासी के चन्द्रमा की समान ज्योतिमान और नेत्र कमल के समान हैं। वह नख से सिख तक सुन्दरता का रूप है, हाथ पाँव सब सुडौल। बूंदी क्या ऐसी सुन्दर स्त्री संसार में न होगी। ऐसी प्रशंसा सुनकर राना के मुंह में पानी भर आया जहां विवाह की रीति पूरी की गई थी उसके पासही बूंदी के रानी की यवनिका (कनात) खिंची हुई थी। राना ने दासियोंको

धन आदि देकर प्रार्थना की, कि किसी प्रकार उसको दिखला दिया जावे। प्रलोभन बहुत बुरा होता है। उसकी कनात भी बूंदी वाली के समीप खींच दी गई और दासी ने अंगुली के संकेत से कहा, देखो वह जो जड़ाऊ कंगन पहिने हुए बैठी है वही तुम्हारी बड़ी साली है।

राना अज्ञानी था, उसने कुछ सोचा विचारा नहीं। दुर्गा का रूप देखकर उसकी बुद्धि जाती रही। वह उसका सम्बंधी तो हो चुका था इसलिये उसने बे धड़क जाकर उसका हाथ पकड़ लिया। रानी को बड़ा क्रोध हुआ। राजपूताने में चलन है कि छोटे बहनोई को बड़ी सालियां कभी छूती नहीं और दूसरे उसका यह आचरण भी उसे बहुत बुरा और निन्दनीय प्रतीत हुआ। दुर्गा ने नेत्र उठाकर देखा, राना के रूप से कोई और ही भाव प्रगट होता था। रानी ने उसका हाथ झटक कर कहा—दुर्भाग्य मूर्ख ? यह तू नहीं जानता कि मैं बूंदी की रानी हूँ। जहां कि स्त्रियां दूसरे पुरुष को देखना तक अनुचित समझती हैं। पापी मैं तुझको इस अपराध का दंड दिये बिना कदापि न रहूँगी।

यह कहकर उसने उसी समय पास रक्खा हुआ तमंचा उठा लिया और बारूद भरने लगी। राना के प्राण सूख गये, काटो तो शरीर में खून नहीं, भयभीत हो गया वह नहीं जानता था कि रानी इतनी क्रोधित हो जायेगी। राना के इस असभ्य व्यवहार की सूचना सारे रनिवास में फैल

गई। सब लोग जानते थे कि बूंदी की स्त्रियां मान मर्यादा के अवसर पर प्राण लिये बिना शाँत नहीं होती।

दुर्गा की माता उसी समय भवन से भागी हुई चली आई और दुर्गा से कहने लगी, पुत्री क्षमा कर दे आखिर तो यह तेरा बहनोई है अज्ञान बालक और मूर्ख हैं, तेरी बहिन का भी अभी विवाह हुआ है। क्या तू उसको आजही विधवा बनाना चाहती है। पुत्री! मेरी ओर तो देख, तमंचा रख दे और उसको क्षमा कर दे। यह कहकर जयपुर की रानी उसके पांव पर गिर पड़ी।

दुर्गा बोली, माता! यह पापी अवश्य दंड देने के योग्य है मैं अब तेरी पुत्री नहीं बलिक बूंदी की लाज और शर्म हूं। इसने तेरी पुत्री का अनादर नहीं किया किन्तु बूंदी की रानी की मानहानि की है। मैं अपनी ओर से तो क्षमा किये देती हूं परंतु बूंदी वाले इसके इस व्यवहार को अवश्य क्षमा के अयोग्य समझेंगे। तू रोकती है इसलिये दंड नहीं देती। जी तो यही चाहता है कि इसका यहां ही बध कर दिया जाता किन्तु मैं अपना हाथ रोक लेती हूं। जिस हाथ को इसने स्पर्श किया है वह काट कर फैंक दूँगी। अब वह इस योग्य नहीं रहा कि बूंदी के पवित्र राजा की सेवा कर सके। अब मुझको यहां रहना पाप है एक क्षण भी यहां न ठहरूंगी। दुर्गा इधर बातें करती जाती थी और उधर उसके हृदय में क्रोध की ज्वाला प्रति क्षण प्रचंड होती जाती थी। उसने

अपनी सखी से कहा—कटार तो उठा ला? अमरसिंह ने मेरे हाथ को छू लिया है, उसको अभी काट दूं।

सखी सहम गई। रानी के नेत्र क्रोध से अंगार बन रहे थे जयपुर की रानी इसकी माता दंग थी। अमरसिंह का पांव धरती में जम गया था एक सिंहनी को छेड़कर इसने व्यर्थ सिर पर आपत्ति बुलाई थी। सखी को आगा पीछा करते देख उसने जोर से कहा, क्यों सखी—अपनी रानी की आज्ञा नहीं मानती? वह रोती हुई पांव पर गिर पड़ी। दुर्गा महा क्रोध में थी। उसने हंसकर कहा—जा ऐसे अवसर पर प्रेम और कोमल भाव प्रगट करना राजपूतनी के लिये अनुचित है तू जा, कटार लेआ?

सखी ने कुछ उत्तर नहीं दिया—कटार उठाकर उसके हाथ में देदी। रानी ने दाहिने हाथ में कटार लेकर बायें हाथ को उसी समय काट डाला और वह धरती पर खट से गिर पड़ा रुधिर बहने लगा। और कोई पुरुष होता तो दुर्बलता और पीड़ा के कारण मूर्छित हो जाता परन्तु क्षत्राणी निराली स्त्री थी। वह अपने स्थान से उठ खड़ी हुई और दासियों को आज्ञा दी कि मेरा घोड़ा अभी तैयार किया जाय और सब सखियाँ मेरे साथ बूँदी को रवाना हों। जयपुर का अन्न जल खाना आज से मेरे लिये पाप है क्योंकि यहाँ बूँदी राजा की मान हानि की गई है घोड़े तैयार होकर आ गये रानी के हाथ से खून बह रहा था वह उसी तरह उठी

और कूदकर घोड़े की पीठ पर सवार हो गई। हाथ में लगाम के सिवा कोई और वस्तु नहीं थी। रानी चल पड़ी बूंदी के सब मनुष्य रानी के पीछे पीछे चल पड़े। सब के हृदयों में क्रोध की आग भीतर ही भीतर जल रही थी परन्तु रानी को मौन देखकर सबके सब चुप थे।

यह सब लोग अभी मार्ग में ही थे कि अजीतसिंह के आने का समाचार सुना गया रानी के चले आने से उसको शांति नहीं थी वह चित्त बहलाने के लिये शिकार खेलने निकला और जयपुर की ओर बढ़ता चला आया। रानीने अपनी एक दासी से कहा—सखी जा और बूंदी नरेश को अभी मेरे सामने ले आ। मैं उससे बातचीत करना चाहती हूँ। दासी दौड़ी, औरजब वह राजा के पास पहुँची तो राजा ने आश्चर्य पूर्वक कहा तू यहाँ कहाँ ! रानी कहां हैं ? और तू इतनी व्याकुल क्यों है उसने उत्तर दिया अन्नदाता—मुझको विशेष हाल बतलाने की आज्ञा नहीं, रानी जी आपके आगमन में पेड़ के नीचे खड़ी हैं आपको बुला रही है वह स्वयं आपको सारा वृत्तान्त कह सुनावेंगी—

राजा उसी समय वहाँ आया जहां रानी खड़ी थी सारा शरीर रुधिर से भर गया था एक हाथ कटा हुआ और दूसरे में लगाम थी रानी की दशा देखकर राजा चिल्ला उठा-अरे ! यह क्या हुआ, क्या आश्चर्य है ! किस कारण यह आपत्ति सिर पर आई, रानीने कहा—राजन् सन्तोष पूर्वक मेरा हाल और

बूंदी के अपमान का वृत्तान्त सुनिये। तब उसने आदि से अन्त तक सारा वृत्तान्त कह सुनाया—

राजा ने पानी मँगाकर अपने हाथ से उसके रुधिर को धोया घोड़े से भूमि पर उतार लिया। जब रानी भूमि पर आगई तो उसके सिर में चक्कर आने लगा और फिर वह मूर्छित हो गई। राजा ने उसको डोली में लिटा दिया और मन में प्रण कर लिया कि जब तक राना अमरसिंह को न मार डालूंगा तब तक कभी दुर्गा के भवन में न जाऊँगा।

रानी तो डोली में मूर्छित पड़ी है आसपास दासियां दुख से रो रही है। अजीतसिंह घोड़े पर सवार हुआ और जयपुर की ओर चल दिया। दूसरे दिन राना भी ससुराल से बिदा हुआ था और राह में अजीतसिंह से मिला सब ने उसका आदर किया। उसने अमरसिंह से मिलना चाहा परन्तु साथियों को भय हुआ क्योंकि बूँदी वाली रानी के के अपमान का वृत्तान्त सब सुन चुके थे। यह भी सोचा कि सम्भव है रानी से उसकी भेंट न हुई हो। वह शैर अथवा शिकार में था अजीतसिंह ने उसको भयभीत देखकर घोड़े को पैड़ लगाई और दूसरे पल में वह उदयपुर की सेना में जा धमका। अभी अमरसिंह को समय भी नहीं मिला था कि उसका आदर सत्कार करता उसने तड़प कर कहा—बूँदी की मानहानि करने वाले सावधान हो जा? अजीत

सिंह आ पहुँचा। जिस हाथ से तूने रानी का अपमान किया है मैं उसको काट डालूँगा। राना घबरा गया और सँभल न सका इतने में अजीतसिंह का भाला उसकी छाती में जा पहुँचा और वह लोटन-कबूतर की तरह भूमि पर तड़पने लगा। दूसरे पल में अजीतसिंह की तलवार ने उसका बायाँ हाथ काट डाला और उसको हाथ में लिये हुए वहाँ से कूच कर दिया। बूंदी के सवार भी उसके पीछे-पीछे चल पड़े। उदयपुर की सेना वालों में किसी को साहस न पड़ा कि उसको रोक सके अथवा उसके रुधिर का बदला ले। एक विचित्र हलचल सी मच गई। नई दुलहिन जिसने अभी तक अच्छी प्रकार अपने पति का मुख भी नहीं देखा था पालकी से नीचे उतरी और उसने राना के शव को उठाकर गोद में ले लिया। उस दुखिया के मुँह से आह तक नहीं निकली। उसने मनुष्यों से संकेत पूर्वक कहा कि मार्ग पर जहाँ मेरा पति मारा गया है एक चिता तैयार कर दो। अल्पायु बाल विधवा रानी, अमरसिंह का शव गोद में लेकर बैठ गई और जब चिता की अग्नि प्रचण्ड होकर ऊँची हुई तो रानी ने कहा—प्राणपति! मेरे भाग्य में यह लिखा था कि विवाह होते ही हमसे तुम से वियोग हो। तुम्हारा कोई दोष नहीं, मेरे कर्मों ने तुमसे यह अनुचित कर्म कराया और तुम चल बसे। मैं तुम्हारे संग चलती हूँ कर्म पर किसी का बस नहीं। मनुष्य क्या विचारता है और

क्या होता है। संसार में किसी बात का ठिकाना नहीं है। मैं कम सुन्दर नहीं थी कि तुमने पराई स्त्री की ओर ध्यान दिया परन्तु यह होनी थी इसको कोई रोक नहीं सकता। अग्नि की लपटें धाँय-धाँय कर उठीं और देखते-देखते उसके नश्वर शरीर को भस्म कर दिया।

रानी किरणदेवी

रानी किरणदेवी

सिसोदिया वंशावतंश महाराना प्रताप के कारण आज हिन्दू जाति अपना सिर ऊँचा किये है। महाराना प्रताप के छोटे भाई शक्ति-सिंह थे जिनकी कन्या का नाम किरण देवी था। यह देवी अपनी अलौकिक शक्ति और बहादुरी में अद्वितीय थी। महाराना प्रताप की यही भतीजी कुमार पृथ्वीराज को ब्याही थी।

बादशाह अकबर बड़ा ही चतुर और बुद्धिमान था। जिस समय इसने राजपूतों को अपने घराने की कन्यायें देने और राजपूतों की कन्याओं को अपने घराने में लेने की ठानी थी उस समय अकबर इस बात को खूब जानता था कि राजपूत अपने धर्मानुसार हम मुसलमानों की कन्यायें लेना स्वीकार न करेंगे किन्तु आरम्भ में इसी परिवर्तन के विचार से राजपूत, अकबर को अपनी कन्यायें देने के लिये तैयार हो गये। यद्यपि राजपूतों को अपने इस इरादे को पूरा करने के लिए तलवार का सहारा लेना पड़ा इसी कारण राजपूतों को मुगल घराने की कन्यायें देने का प्रश्न सदा के लिये दबा दिया गया। इसके अतिरिक्त राजपूत भी आपस की फूट के कारण अपने स्वजातीय भाइयों के विरुद्ध अकबर की सहायता करने लगे।

इस प्रकार धीरे-धीरे सब के सब अकबर के आधीन होकर रहने लगे जिसके फलस्वरूप मुगल साम्राज्य की नींव और भी मजबूत हो गई। अब किसको साहस हो कि राजपूतों को, शाही घराने की लड़कियाँ देने की प्रतिज्ञा का स्मरण अकबर को दिलाये फिर भला अकबर को क्या पड़ी थी जो ऐसा करता। इस कारण बिचारे राजपूत अपनी कन्यायें देकर स्वयं मुँह ताकते ही रह गये * असल बात तो

* मि० फ्रैंक्विसबर्नियर ने सन् १६५६ ई० से १६६८ ई० तक

यह थी कि अकबर यह काम केवल अत्याचार और धोखेबाजी ही करने के लिये शुरू किया था। उसकी यह इच्छा कभी न थी कि वह मुगल खान्दान की शाहजादियाँ राजपूतों को दे। एक बात तो यह कि अकबर ने इस प्रकार राजपूतों का अपमान किया और दूसरे यह कि अकबर ने राजपूतों का धर्म उनकी स्त्रियों का सतीत्व मिट्टीमें मिला, इन्हें अपमानित करने और अपनी बुरी बासनाओं के पूर्ण करने की इच्छा से ही "नौ

भारत में रहकर अपनी यात्रा का वर्णन 'बर्नियर की भारतयात्रा' नामक पुस्तक के एक स्थान पर लिखा है, कि बादशाह शाहजहाँ की सन्तान में से 'शाहज़ादी बेगम' नाम की एक लड़की थी वह उसे बहुत चाहता था और सदा पहरे में रखा करता था क्योंकि शाहज़ादियों की कभी शादी नहीं होती थी। शाहजादी बेगम का भाई दारा था जो उस पर अधिक प्रेम करता था। दारा ने एक बार शाहजादी बेगम से प्रतिज्ञा भी की थी कि जब मैं बादशाह हो जाऊँगा तब तुरन्त तुझको शादी करने के लिये अनुमति दे दूँगा। दारा की यह प्रतिज्ञा भारत के बादशाहों की नीति के विरुद्ध थी जिसके अनुसार शाहज़ादियों का विवाह अनुचित माना गया है। इसका पहिला कारण तो यह है कि कोई व्यक्ति शाही कुटुम्ब का सम्बन्धी होने के योग्य नहीं समझा जाता था। दूसरा यह कि इस बात का खटका था कि कहीं शाहज़ादी का पति किसी समय बलवान होकर हमारे राज्य का लोभी बनकर राज्य को अपने अधिकार में करने की कोशिश न करे।

रोज का मेला' या मीना बाजार का नींव डाली थी। नौरोज के मेला को शुरू करने के पहिले अकबर प्रत्येक भाग के में बड़े २ त्योहारों पर मेले लगाया करता था। परन्तु अब यह मेले बन्द कर 'नौरोज' के नव दिन माने गये थे। इसे 'खुशरोज' भी कहा करता था। क्योंकि अकबर अपनी बुरी वासनाओं को तृप्त करने के लिये उन दिनों बड़ा ही आनन्द मनाया करता था। अपनी पाप वासनाओं की पूर्ति के लिये अकबर ने यह जाल बिछाया था। जहाँ दिन दहाड़े स्त्रियों के सतीत्व की बिक्री और लूट होती थी इस मेले में धर्म के विरुद्ध और मनुष्यत्व से रहित कर्म हुआ करते थे। यह मेला एक प्रशस्त मैदान में लगाया जाता था जिसके चारों ओर ऊँची ऊँची दीवारें थी इसमें स्त्रियाँ ही दूकानदार, स्त्रियाँ ही खरीदार; स्त्रियाँ ही गाने बजाने वाली, स्त्रियाँ ही देखने और सुनने वाली होती थीं शाही घराने की बेगमें, बड़े-बड़े अमीर उमरा और मुसलमानों की स्त्रियाँ और आधीन राजे महाराजों रानियाँ व राजकुमारियाँ, हिन्दू रईसों की पत्नियाँ इसके सिवा अमीर गरीब सभी प्रकार की स्त्रियों की यह बड़ी ही अद्भुत प्रदर्शिनी होती थी।

नामी २ सौदागरों की सुन्दर स्त्रियाँ बड़ी ही अच्छी और मनोहर सुख विलास के सामग्री की दुकाने लगाये बैठी रही करती थीं। जौहरियों की स्त्रियाँ भाँति भाँति के रत्न आभूषण हीरे माणिक आदि बेचा करती थीं। सराफों की स्त्रियाँ

ने बहुमूल्य सोने चाँदी के गहनों की दुकानें लगा रक्खी थीं। बजाजों की स्त्रियाँ अनेक प्रकार की मूल्यवान रेशमी साड़ी मखमली ज़री के काम किये वस्त्र और सादे कपड़े बेचा करती थीं। कहीं-कहीं ताजे-ताजे फल फूल और मेवों की दुकानें सजी थीं। कहीं-कहीं रूपवती मालिनें तरह तरह के फूलों के हार बेचा करती थीं। कहीं कहीं सुन्दर स्वरूप तम्बोलिनें विचित्र ठाठ बनाये चाँदी सोने के वर्क लगे पान के बीड़े बेचती थीं। कहीं स्वर्ग की अफसराओं को मात करने वाली कोमलाङ्गी शाही बेगमें कुन्दुरू की तरह लाल होठों में सुन्दर सोने की मुँहनाल दबाये हुक्का पीती नजर आती थीं।

इस मेले की सजावट, सुन्दरता, शोभा और सफाई आदि की जितनी भी प्रशंसा की जाय, थोड़ी ही जँचेगी। दूकान के बीच में बहुत से सुन्दर-सुन्दर हौज भी लगे हुये थे जिनमें स्वच्छ साफ़ जल भरा रहता था। चारों ओर फूल के गमले सजे रहा करते थे जिनमें सुन्दर रमणियाँ अपने सौंदर्य छटा को देख मन में फूली नहीं समाती थीं। कहीं-कहीं बेगमें हर्षोल्लास से अन्य स्त्रियों पर गुलाब केवड़े के फौवारे छोड़कर प्रसन्न होती दिखाई पड़ती थीं। इठला-इठला कर एक दूसरे पर गिर-गिर पड़ती थी धक्के भी दिया करती थी, हँसी और ठठोल करती और नाचती गाती भी थीं। मतलब यह कि तरह-तरह के खेल तमाशे करती हुई उस मीना बाजार की शोभा बढ़ाया करती थीं।

इस प्रकार इस जनाने बाजार की दूकानों पर तमाम स्त्रियाँ ही रहती थीं और इस बाजार में विक्रियार्थ-चीज़ें भी स्त्रियों ही के उपयोग की होती थी नौकर और दास भी सब स्त्रियाँ ही रहती थीं। स्त्रियां ही पहरेदार का काम करती थी। इस आश्चर्य जनक स्त्रियों के गोल में यदि कोई पुरुष रहता था, तो वह केवल अकबर बादशाह ही था।

अकबर अपना भेष बदल कर स्त्रियों का रूप धारण कर चोरी से चोरों की तरह चारों तरफ फिरा करता था और अपना उद्देश्य पूरा करता था। वही खरीद बिक्री भी करता था और दमड़ी की वस्तुओं का मूल्य हजारों रुपये तक दे दिया करता था।

बाहर के लोगों को यह समझाया गया था कि इस मेले से हिन्दू और मुसलमान स्त्रियों में परस्पर प्रेम का प्रसार होगा और आपस में मेल मुहब्बत बढ़ेगी। साथ ही बाद्-शाह को भी अपनी प्रजा की दशा जानने का एक अच्छा अवसर प्राप्त होगा। इन स्त्रियों के बाजार में भेष बदलकर अकबर इसलिये जाया करता था कि व्यापार वाणिज्य का भीतरी रहस्य भी उसे मालूम हो जाय साथही अपनी हुकू-मत और राज्य की वास्तविक दशा का संक्षिप्त हाल भी अपने कानों से सुनकर अपनी राय स्थिर करे। किन्तु वास्तव में यदि पूछिये तो यह सब ढोंग था और मिथ्या आडम्बर मात्र था।

पाठक और पाठिकायें स्वयं समझ सकती हैं कि स्त्रियों के पास आकर राज्य का हाल चाल और शासन की तात्कालिक परिस्थिति का पता लगाना क्या? बिलकुल असंभव बात नहीं है। अकबर के दरबार में रहनेवाले एक प्रसिद्ध लेखक ने लिखा है कि—"प्रजावत्सल बादशाह स्वयं भी मेले में पधारते थे। और अपने प्रजा जनों की बहू बेटियों को देखकर ऐसे प्रसन्न होते थे कि जैसे माता पिता अपनी सन्तान को देखकर प्रसन्न होते हैं। वे जहाँ उचित स्थान देखते थे बैठ जाते थे बादशाही बेगमें, बहिनें, बेटियाँ पास बैठती थीं। अमीर उमराओं की स्त्रियाँ आकर उनका अभिवादन करती थीं। अच्छी अच्छी चीजें भेंट करती थीं। अपने बाल बच्चों को उनके चरणों में समर्पण करती थीं।

वाह खूब! क्या ही अच्छा मन गढन्त लेख है। भला स्त्रियों का पर-पुरुष को अभिवादन करना कभी उचित कहा जा सकता है। इस विषय में कर्नलटाड साहब अपने "टाड राजस्थान" में लिखते हैं कि "अब्दुल फज़ल के इस युक्ति पूर्ण वर्णन से इस अपवित्र गन्दे मीना बाजार के दोषों पर बहुत कुछ पर्दा पड़जाता है किन्तु संसार का कोई भी मनुष्य इस बात को स्वीकार न करेगा कि अकबर अपने राज्य की परिस्थिति का ज्ञान बहुत से दरबारियों की ठेठ भाषा पश्तो और हिन्दू उमरावों की स्त्रियों की असली भाषा हिन्दी में प्राप्त कर सकता हो। नौरोज के मेले में ऐसे बाजार होते

थे जहाँ राजपूत कन्याओं और युवतियों के सतीत्व का विक्रय होता था।" हिन्दू धर्म को नष्ट करने के लिये ही अकबर बादशाह ने इस मेले की नींव डाली थी। सभ्य राजपूत घराने की महिलाओं के साथ नौरोज के जनाने बाजार में अकबर ने बड़ी ही असभ्यता का व्यवहार किया। उदयसिंह, शाही भाट का बड़ा भाई था। इसकी पत्नी का सतीत्व अकबर ने नष्ट किया। ईश्वर जाने इस रमणी में साहस और आत्मबल की शायद कमी थी या धर्माभाव या सद्गुणोंका ही अभाव था कि इसने बादशाह का कुछ सामना न किया। कुछ भी हो अकबर ने इसे धर्मभ्रष्ट तो अवश्य ही कर दिया। जब वह वापस आई तो अपने सतीत्व रत्न को लुटा आने के बदले बड़े-बड़े मूल्यवान रत्नालंकारों से लदी हुई आई। कुमार पृथ्वीराज ने इसके पति को सम्बोधित कर कहा था वह कि अपने घर में सिर से पैर तक सोने के गहने और जेवर और जवाहिरात से लदी हुई आवेगी, किन्तु भाई! तुम्हारे मुँह पर मूँछे न रहेंगीं।

इस नौरोज के मेले में स्त्रियों के रूप का बाजार लगता। और उनकी सुन्दरता बेची जाती थी। सभ्य घराने की महिलाओं के उज्जवल सतीत्व रत्न के लूटने और उनके साथ अनुचित असभ्य व्यवहार करने के लिये इस मेले का आविष्कार हुआ था।

एक दिन की बात है कि नौरोज का मेला लगा हुआ था

सुन्दरियों और नई नवेलियों की खूब चहल पहल हो रही थी। अकबर भी भेष बदले हुये स्त्रियों को देखता फिरता था। एकाएक इसकी दृष्टि कुमार पृथ्वीराज की धर्मपत्नी रानी किरण देवी पर पड़ी।

अपने विचारों के विश्वास से जैसा कि कुमार पृथ्वीराज स्वयं थे उसी भाँति उनकी स्त्री 'किरणदेवी' भी पूर्ण क्षत्राणी थी। जिस प्रकार वह अलौकिक सद्गुणों में अपनी बराबरी का किसी को न पाती थी। उसी प्रकार सुन्दरता में भी राजपूताने में कोई रमणी इनकी बराबरी न कर सकती। रूप और गुण दोनों ही उनमें पूर्णतया विद्यमान थे। ज्योंही अकबर की दृष्टि उनकी दृष्टि से मिल गई त्योंही अकबर तन मन से 'किरणदेवी' पर आसक्त हो गया। उसने समझा कि अन्य साधारण स्त्रियों की तरह यह 'देवी' भी मेरे जाल में फँस जायगी। झट उसने अपनी कुटनियों (दूतियों) को संकेत कर दिया कि किसी प्रकार इसे घेर कर ले आवें। फन्दे में फँसकर चिड़िया भागने न पावे।

इसी बीच किरण देवी घर लौटने का विचार करने लगी। उस समय उसके मन में इस बात की कल्पना तक भी न थी कि कुछ अनोखी घटना होने वाली है। यह सत्य है कि इसकी अनुपम सुन्दरता के कारण बादशाह ने उस दिन के मेले में केवल इसी को चुना था। यह कोई आश्चर्य की बात

नहीं कि इस चुनाव की तह में यह बात छिपी हो कि किसी प्रकार मेवाड़ के वंशधरों को अपमानित कर उसका धर्म लूट लिया जावे। बादशाह के सिर पर सोते जागते चलते फिरते उठते बैठते आठों पहर यही धुन सवार रहती थी कि किसी न किसी प्रकार से मेवाड़ के वंशधरों की इज्ज़त बिगाड़, उन्हें धर्मभ्रष्ट किया जाय। कितने शोक की बात है बादशाह ने इतना भी ख्याल न किया कि यह स्त्री तो मेरे ही शरण है और मेरे ही आश्रय में रहती है कम से कम इसके साथ तो ऐसी दगाबाज़ी न करूँ ?

कुटनियों के जाल पाश के कारण जाते-जाते वह अन्य स्त्रियों से अलग कर दी गई। इसके बाद वह इस मकान के भूल भुलैये रास्ते में पड़कर भटक गई और अकेले ही रह गई। यह भूल भूलैया और पेचीले रास्ते इन्हीं गन्दे विचारों को सामने रखकर जान बूझकर बनवाये गये थे। अतः अभी वह आँगन में ही आई थी कि एकाएक चारों तरफ़ के द्वार बन्द हो गये और उसे वहाँ से बाहर निकलने का कोई मार्ग न दिखाई पड़ा। वह एकदम ठिठककर एक स्थान पर खड़ी हो गई और आश्चर्य चकित दृष्टि से इधर उधर देखने लगी। अब इसके मन में सैकड़ों प्रकार की शंकायें उत्पन्न होने लगीं। उसे बहुत समय तक अपने इन विचारों में न फँसे रहना पड़ा। क्षण भर के बाद ही एक तरफ का दरवाजा खुला और उसमें से अकबर बाहर निकल

कर बुरी तरह दृष्टि फेंकता हुआ राजकुमारी को देखने लगा। उसे आलिंगन करने के लिये अकबर ने अपने दोनों हाथ फैला दिये इसके बाद लज्जा और धर्म को तिलाञ्जलि देकर (क्योंकि लम्पट और कामी पुरुषों को किसी प्रकार की लज्जा और हिताहित का ज्ञान नहीं रहता) उसे अनेकों प्रकार के प्रलोभन देने लगा।

अकबर को भला क्या मालूम था कि मैंने इस रमणी को अपने जाल में नहीं फँसाया वरन् स्वयं ही सिंहनी के मुँह में आ फँसा हूँ। कारण यह कि सिंह की पुत्री भी सिंहनी ही होती है।

अकबर की इन घृणास्पद बातों को सुनकर राजकुमारी की भौंहें तन गयीं। सारा शरीर थर-थर काँपने लगा। मारे क्रोध के उसने एक बार बड़ी ही घृणा की दृष्टि से घूर कर अकबर की ओर देखा। इसके बाद फौरन ही कटार निकाल कर भूखी सिंहनी की भाँति अकबर पर टूट पड़ी। बस उस उग्र रूपा-चण्डिका के धक्के को न सँभाल सकने के कारण अकबर भयातुर होकर धरती पर गिर पड़ा। उसके गिरते ही उसकी छाती पर कटार रखकर गम्भीर स्वर से कड़क कर बोली—

रे मुगल कुल कलंक—बोल! अभी यह तेज कटार तेरी छाती में भोंक तेरी अपवित्र आत्मा को यमधाम भेजती हूँ। यदि अपनी जान बचाना चाहता है तो शीघ्र प्रतिज्ञा कर!

और सौगन्ध खा, कि आज से कभी भी किसी भी स्त्री का सतीत्व नष्ट न करूँगा। सबों को माँ वहिन के भाव से देखूँगा।

अकबर को स्वप्न में भी यह शंका न थी कि उसे इस प्रकार एक क्षत्राणी के हाथ से नीचा देखना पड़ेगा। अतः अपनी सब चौकड़ी भूल गया और उस सिंहनी क्षत्राणी के सामने कसम खाने के अतिरिक्त और कोई उपाय न सूझा। बोल उठा—माता! अब क्षमा कर! अब कभी ऐसा न करूँगा और नौरोज का मेला भी आज से बंद करवा दूँगा। बस माता—क्षमा कर?

कसम खिलाकर विजयी रण चण्डिका की भाँति किरण देवी अकबर की छाती से उतर पड़ी और घर को चल दी। यहाँ यह पता नहीं लगता कि राजकुमारी किरणदेवी ने यह कटार अकबर की छाती पर भोंक कर समाप्त क्यों न कर दिया जब कि वह उसके आधीन था। कदाचित इसका यह कारण किरणदेवी ने सोचा हो कि कहीं यदि हाथ चूक गया और वह पापिष्ट बच गया तो मामला कुछ और का और ही हो जाय। इसी कारण केवल सौगंध दिला कर छोड़ दिया।

किन्तु विचारणीय बात तो यह है कि संसार में ऐसी कितनी ही स्त्रियाँ हो सकती थीं जो अकबर जैसे प्रताप-शाली बादशाह के सन्मुख शिर उठाकर खड़ी हो सकती थीं और अपने सतीत्व की रक्षाकर बादशाह से सौगंध ले सकती थीं। करोड़ों में से कोई एकही रमणी निकले तो निकले।

नहीं तो इसमें भी सन्देह है। यह भी वीर राजपूत क्षत्राणियों का ही काम है अन्य स्त्रियों का नहीं।

इस नौरोज के मेले के कारण बादशाह अकबर के ललाट में जो कलंक का टीका लगा है वह इतिहास में अमिट हो गया। क्षत्राणी किरण देवी ने जिस साहस से अपने सतीत्व की रक्षा की है वह इतिहास में स्वर्णाक्षरों से अंकित होगा जो भारतीय नरनारियों के गौरव का कारण होकर शिक्षा का आदर्श बनेगी।

रानी उर्मिला

रानी उर्मिला

अजमेर के महाराज धर्मगजदेव चौहान बड़े ही शूर-वीर क्षत्रिय थे। इनकी रानी का नाम उर्मिला था। यह बड़ी सुशील, शांति उच्च विचार और सात्वकी स्त्री थी। और राजनीति के व्यवहार को भली प्रकार जानती थी।

धर्मगजदेव के और भी कई रानियां थीं परन्तु सब से अधिक उर्मिला ही उन्हें प्यारी थी। उर्मिला के प्रेम ने राजा को अपने वस में कर लिया था। वह राजकाज की बातों को अच्छी प्रकार जानती थी और कभी २ मंत्री का काम भी किया करती थी। सैर सपाटा और शिकार खेलने का भी उन्हें पूर्ण शौक था।

जिस समय में धर्मगजदेव अजमेर में राज्य कर रहे थे उसी समय महमूद गजनवी ने भारत में चढ़ाई की। प्रथम तो महमूद ने सोमनाथ के मन्दिर को लूट कर नष्ट भ्रष्ट किया। फिर मुलतान का सत्यानाश किया। इसके बाद अजमेर पर चढ़ाई की। जब यह समाचार धर्मगजदेव ने सुना तो अपनी सेना संगठित करने लगे। इसके पहिले भी एक बार गजनवी

से सामना हो चुका था। जिसमें गजनवी को हार खाकर पीछे लौटना पड़ा था। उस समय से गजनवी को मालूम हो गया था कि धर्मगजदेव के सन्मुख मैं नहीं ठहर सकता परंतु इस समय देश भर में फूट फैली हुई थी गजनवी बराबर धावा करता चला गया। अजमेर में यह चढ़ाई धर्म गजदेव को नीचा दिखाने के लिये ही की गई थी।

धर्मगजदेव के पास पहिले बहुत कुछ सेना थी परन्तु इन्हीं मुसलमान लुटेरों का सामना करने के कारण उनकी सेना बहुत कुछ खप चुकी थी। कुछ थोड़े से सरदार बच रहे थे। इस समय आपस की फूट के कारण किसी से सहायता की भी आशा नहीं थी। क्योंकि सब हिन्दू राजा अलग, अलग, थे सब मिलकर शत्रु का सामना भी न कर सकते थे। इसी कारण सदैव विपत्ति में फंसे रहते थे।

धर्मगजदेव सदैव इसी सोच विचार में रहा करते थे परंतु धैर्य्य और वीरता के कारण कोई अंतर न पड़ता था। अजमेर के इर्द गिर्द उस समय कई छोटे, छोटे, राज्य थे। राजा धर्मगजदेव ने सबको युद्ध में शामिल होने के लिये सूचना दे दी और कहला भेजा कि जिस राजपूत में अपने कर्त्तव्य का पालन करने की शक्ति हो वह शत्रु के सन्मुख आकर डट जावे?

जिस समय वीरों ने राजा धर्मगजदेव का सन्देशा सुना सब

की भुजायें फड़क उठीं। राज माताओं और रानियों ने अपने, अपने पुत्रों और पतियों से कहा—वीरो! आज वह समय आ गया है कि जिसके लिये क्षत्राणियां पुत्र उत्पन्न किया करती हैं। बहिनें प्रसन्न हो उठीं क्योंकि उनको अपने भाइयों की कमर में तलवार बांधने और वीर कह कर युद्धभूमि में भेजने का समय मिल रहा था। स्त्रियों को इस बात की खुशी थी कि उनके पति, धर्म्म-रक्षा के लिये किसी से पीछे हटने वाले नहीं थे।

धर्मगजदेव के सन्देशानुसार राजपूतों की एक बड़ी सेना सहस्रों की तादाद में तैयार हो गई। धर्मगजदेव ने सबको अपनी छावनी में स्थान दिया। यह सब राजा से अपरिचित अवश्य थे परंतु ऐसा कोई भी न था जो राजा के लिये अपना सर्वस्व भेंट करने में आनाकानी करता।

इस प्रकार की सब सूचनायें महारानी उर्मिला को हर समय मिला करती थीं। यह इतनी बड़ी सेना महाराज ने रानी उर्मिला के ही परामर्श से इकट्ठी कर पाई थी। जो कुछ हो सका, उर्मिला ने सेना सम्बन्धी कार्यों में मदद दी। जब अंत समय आ पहुँचा और सिर्फ एक पहर रात बाकी रही तो धर्मगजदेव ने उठकर स्नानादि नित्य कर्म से छुट्टी पाई सेना को सूचना देने के लिये छावनी की ओर चला। रानी ने कहा—स्वामिन! यदि आज्ञा हो तो मैं भी रणभूमि में चलूं? क्योंकि मेरा स्थान घर में नहीं! मेरा स्थान आपके

बांये ओर है अर्थात् हर समय दुख सुख में मुझको तुम्हारे साथ रहने का अधिकार है। मेरी इच्छा है कि आप आज्ञा दें तो मैं भी केसरिया वस्त्र धार और सिर को आपके ऊपर निछावर कर जन्म सुफल करूं, ऐसा समय मुझको फिर कभी काहे को मिलेगा।

महारानी उर्मिला की इस वीर युक्ति को सुनकर राजा की आत्मा उछल पड़ी वह कहने लगे—धन्य है! तू धन्य है!! देवी तुझे धन्य है!!! तुझको कोई रोक नहीं सकता। तू प्रसन्नता पूर्वक युद्ध में भाग ले सकती है। मैं जानता हूँ कि जिस समय तेरी तलवार चमकेगी शत्रुओं का पता भी न लगेगा परन्तु एक बात है जिसपर विचार करना तेरा काम है। प्रथम तेरे संग रहने के कारण मुझको हर समय तेरी ही चिन्ता रहेगी। क्या आश्चर्य कि इस चिन्ता में अपना कर्त्तव्य पालन न कर सकूं। दूसरे यह वर्षा ऋतु है, काली घटायें छा रही है, बिजली चमक रही है। जिस समय मूसलाधार वर्षा शुरू हो जायगी तो उस समय तेरा क्या हाल होगा। मुझको तेरी दशा देखते ही नम्र भाव होना पड़ेगा और फिर मुझे अपने दुख की नहीं तेरे ही सुख की चिन्ता घेरे रहेगी। तीसरे मैं अजमेर में एक ऐसा मनुष्य छोड़ जाना उचित समझता हूँ जो राज्य प्रबन्ध ठीक तौर पर चला सके। समय कुसमय पर मेरी सेना को रसद सामान पहुँचा सके और मनुष्यों का प्रबन्ध कर सके। इन वस्तुओं

को इकट्ठी करने के लिये जो मनुष्य चाहिये था इस समय सिवा तेरे और कोई दिखाई भी नहीं देता है। युद्धभूमि में तेरे जाने से समय पर पछताना पड़ेगा।

रानी ने ध्यान पूर्वक राजा की बातें सुनी और उसके कन्धे पर हाथ रखते हुये उत्तर दिया—"आपकी आज्ञा शिरोधार्य है ईश्वर आपकी रक्षा करे, आप आनन्द पूर्वक शत्रु को परास्त करके लौट आवें, और यदि कोई ऐसा समय आ भी गया तो आप उर्मिला को अपने संग ही पावेंगे। इसमें किसी बात का सन्देह नहीं। आप प्रसन्नता पूर्वक जाइये और अपना कार्य सम्पादन कीजिये।"

महाराज धर्मगजदेव महल से निकल छावनी में आये। नगाड़े पर चोब दी गई, राजपूत सेना पहिले ही से तैयार खड़ी थी। केवल आज्ञा की ही देरी थी। सब सजे सजाये घोड़ों पर सवार हो गये और फिर समुद्री लहरों की भाँति उमड़ती हुई सेना शत्रु संहार हेतु आगे बढ़ी। युद्ध आरम्भ हो गया, तलवारों से तलवारें टनकने लगीं। राजपूतों ने वीरता से इस प्रकार का कर्त्तव्य पालन किया कि शत्रुओं को अपनी जान बचा पीछे लौटना पड़ा। परन्तु फिर आगे बढ़े।

धर्मगजदेव इस युद्ध में जिस तरफ झुक जाता था शत्रु की सेना का सफ़ाया कर देता था। उसकी वीरता देख राजपूतों का साहस दुगना बढ़ गया। परन्तु हिन्दुओं के

विनाश का समय निकट आ गया था एक मुसलमान का एक तीर सनसनाता हुआ आया जिसने धर्मगजदेव को निकम्मा कर दिया वह सँभलना ही चाहते थे कि एक दूसरे तीर ने उसे भूमि पर गिरा दिया। राजपूत-राजा की मृत्यु से अत्यन्त दुखी हुये परन्तु उस समय वे सब खूब दिल खो[illegible]ड़े और सायंकाल होते-होते राजा धर्मगजदेव का शव संग लिये किले में आये। शव पर फूलों की वर्षा की गई। सभों की आशा निराशा में विलीन हो गई।

जिस समय रानी ने सुना कि राजा स्वर्ग को सिधार गया तो उस पर दुःख का पहाड़ टूट पड़ा। वह महल से बाहर निकल आई और राजा के शव को प्रेम भरी दृष्टि से देखा। आज्ञा देकर शीघ्रही चिता सजाई गई। बहुत सी स्त्रियाँ रानी के इर्द गिर्द घेर कर खड़ी हो गई और सब ने सती होने से रोकने का प्रयत्न किया। पुरुषों ने रोक कर कहा--माता! तू हमको लड़ने की आज्ञा दे और हम पर राज्य कर!

उर्मिला ने हँस कर उत्तर दिया अब इस बात का समय नहीं--राजपूतो! अब वह समय आ गया है जिस कार्य के वास्ते राजपूत क्षत्राणियाँ अपनी कोख से पुत्र उत्पन्न करती हैं वह कार्य राजा ने कर दिखाया। अब दूसरे दिन तुम सबै यही कार्य करोगे। फिर वह स्त्रियों को सम्बोधन कर बोली—कि जिस कार्य के लिये राजपूतनियाँ पुत्र उत्पन्न

करती हैं उससे मुझको मत रोको। तुम भी वही काम करो और समय पर अपना धर्म पालन करो।

सती के भावों को देखकर उसी समय चिता चुन कर तैयार की गई। राजा का शव गोद में लेकर रानी उर्मिला चिता में बैठ गई और आग लगा दी गई। राजपूत और राजपूतनियाँ उर्मिला का अंतिम दर्शन करने हेतु आगे बढ़ीं। उर्मिला ने सबको सम्बोधन कर कहा—राजपूतों! राजा और देश की लाज तुम्हारे हाथ है तुम्हें भी इसी पथ का पथिक बन कर अपनी आन बचानी होगी। बात पूरी भी न होने पाई थी कि अग्नि की भयानक लपेटों के बीच उर्मिला का शरीर भस्म होने लगा और क्षण भर में वह इस संसार से कूच कर गई।

॥ समाप्त ॥

लक्ष्मीचन्द द्वारा—सियाराम प्रेस, बड़ीपियरी, बनारस सिटी में मुद्रित।